अद्वैतसिद्धांत

मेद, तच नित्यद्रव्यसाधारणम्, इति तद्व्यावृत्त्यर्थं नित्यद्रव्यान्यत्वमिति ।
०चिमतमिति० ॥ संयोगस्यापि व्याप्यवृत्तित्वं नाभिमतम् ॥

अद्वैत सिद्धान्त

भूमिका

परिदृश्यमान विश्वप्रपंच का मूलतत्व स्वरूपतः कैसा है यह जानने की अभिलाषा विवेकी के लिये स्वाभाविक है। इस जिज्ञासा के कारण विचार की प्रवृत्ति होती है। और विचार के फलरूप भिन्न भिन्न सिद्धांत प्रगट होते हैं। भारतमें जो कुछ दार्शनिक सिद्धांत प्रगट हुए हैं उनके नाम बहुत्ववाद द्वैतवाद और अद्वैतवाद दे सकते हैं। इन वादों में भी कई मतभेद है।

अद्वैतवादमे विशिष्ट और केवल ये दो भेद हैं। इस प्रबंधमें केवलाद्वैतवादीयोंका तत्वविषयक सिद्धान्त संक्षेपमे प्रतिपादित कीया जायगा। उनका सिद्धांत यह है कि सर्वदृश्य-प्रकाशक स्वप्रकाश अनन्तस्वरूप ब्रह्म ही किंचित् उपाधिवश विवर्तित होकर चेतनाचेतन नानाविध पदार्थरूपसे प्रतीयमान होता है, तद्व्यतिरिक्त अपर कुछ वास्तव नहीं। इस सिद्धांतका श्रुति में तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है ऐसा केवलाद्वैतवादिको अभिमत है। किसी स्थलमें साक्षात् अद्वैत प्रतिपादन द्वारा (एकमेवाद्वितीयम्),कहींपर द्वैतके निषेध द्वारा (नेहनानास्तिकिंचन), अन्यस्थानमे ब्रह्म ही जगत्का उपादान है ऐसा कहकर (यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते)। श्रुति वाक्यों के तात्पर्यके विषयमें नानाविध संदेह और मतभेद है और भिन्न २ समाज परस्पर विरुद्ध वाक्यों को प्रमाण रूपसे मानते

हैं, इसलिये यह प्रबंध श्रुतिव्याख्यामें प्रवृत्त न होकर युक्ति तर्क द्वारा प्रतिपादन किया जायगा। सत्यका निर्धारण विचारद्वारा करना यह मानवमात्र का स्वाभाविक और सार्वजनिक पथ है। किसी शास्त्रको सब लोक प्रमाणभूत न मानें परतु जबतक विचारमें कोई भ्रान्ति नहीं पाई जाती तबतक उस विचार द्वारा प्रस्थापित किये हुये सिद्धात को सबको मानना ही पडता है।

केवल तर्क अप्रतिष्ठ है अत श्रुतिव्याख्यामेंही प्रवृत्त होना सगत है यह वचन विचारसह नहीं। जिस कारणसे तर्क की अप्रतिष्ठा उसी कारणसे उक्त व्याख्या की भी अप्रतिष्ठा समझनी चाहिये। एकने तर्कसे स्थिर कीहुई सिद्धान्तको दूसरी अधिक तर्ककुशल व्यक्ति जैसे विपर्यस्त कर सकता है उसी प्रकार एक व्याख्या कर्ता की अपेक्षा दूसरी अधिक बुद्धिमान व्यक्ति उस व्याख्याका खण्डन और उससे विपरीत व्याख्याभी कर सकता है। शास्त्रोंके तात्पर्यका निर्णय इस प्रकारकी व्याख्याओं द्वारा ही करना होगा इसलिये शास्त्रव्याख्या और श्रुतिव्याख्याभी अप्रतिष्ठ ही है। औरभी 'तर्काप्रतिष्ठानात्' यह उद्घोष शोभनीय नहीं, कारण, यदि तर्क मात्र ही अप्रतिष्ठ हो और अनुमान मात्रकाही प्रामण्य सदिग्ध हो तो सब तर्क अप्रतिष्ठ यह सिद्धात किस प्रमाणसे सिद्ध होगी? कतिपय तर्कोंकी अप्रतिष्ठा देखकर उनके दृष्टान्तोंसे तर्क अर्थात् अनुमान द्वाराही सब तर्कोंकी अप्रतिष्ठा सिद्ध करनी होगी। किन्तु सब तर्क यदि अप्रतिष्ठ या सन्दिग्ध-प्रामाण्य हो तो सब तर्कोंकी अप्रतिष्ठाभी तर्कद्वारा सिद्ध नहीं हो सकती। अत तर्कमात्र ही अप्रतिष्ठ है ऐसा वचन असंगत है। हेतुवादका त्याग करनेसे

स्वपक्षका समर्थन और प्रकाशन सभव नही। बुद्धिकी तीक्ष्णता के तारतम्य के अनुसार युक्ति का तारतम्य होना भी स्वाभाविक है। एकसमयमे जो युक्ति अखडनीय प्रतीत होती है वह बुद्धि के अधिक उन्नत विकासके साथ खडित हो सकेगी। तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि तत्वनिरूपण में युक्ति ही एक मात्र मार्ग है क्योंकि इसके अस्वीकार करने के लिये भी युक्ति का ही आश्रय लेना पडता है। औरभी, सशय होनेपर यथामति युक्ति–तर्क–से बोध का लाभ होता है, वह अपनी सपत्ति होती है। अत इस प्रबधका आरम्भ युक्तितर्क के बलपर होता है यह योग्य ही है। इस प्रबध में जो वाक्य उध्दृत किये जावेंगे वे केवल युक्ति के समर्थकरुपसे या युक्ति के उत्थापक रुपसे किये जावेंगे, वे अभ्रात अखडनीय प्रमाण रूपसे उपयोगमें नही लावे जावेंगे। स्वतत्र–विचार–विहीन श्रद्धाजड होकर प्राच्य या पाश्चात्य कोई भी सिद्धात अभ्रान्त रूपसे मान्य नहीं करना चाहिये (१) यदि केवल श्रद्धासे किसी सिद्धान्त को आलिंगन करना अभिप्रेत न हो

[१] न वाक्यमात्रतो बालो निपतन्ति महादृशा।
युक्तिमद्वचन ग्राह्य मयान्यैश्च भवद्विधै।

(साख्य प्रवचन सूत्रवृत्तिमे उध्दृत)

It is a disease of philosophy when it is neither bold nor humble, but merely a reflection of the temperamental presuppositions of exceptional personalities The final court of appeal is intrinsic reasonableness

(Whitehead's "Process and Reality")

परतु दार्शनिक पद्धति का अवलम्बन कर तत्व का निर्णय करना अभिष्ट हो तो मानवीय अकृत्रिम अनुभव को यथावत् मानकर उसके विश्लेषण पूर्वक केवल चिंतन की महायता स यथामति निर्दोष विचार प्रगट करने होंगे। विचारपद्धति पृथक र है। इस प्रबंध मे भारतवर्षीय मध्ययुग के दार्शनिक मनीषियों की विचारप्रणाली का अनुसरण किया जायगा। इस कारण आधुनिक पाश्चात्य जडविज्ञान के और गणितसिद्धान्तमिश्रित अध्यात्म विज्ञान के अनुरूप विचार इस प्रबंधमें नहीं पाये जायेंगे तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान या शारीरविज्ञान या भूतविज्ञान के साथ तुलना कर दिखलाने का प्रयासभी इस प्रबंधमें नहीं किया जायगा।

दर्शन शास्त्र का और इन सब शास्त्रों का विचार और विषयके भेद प्रसिद्ध है (२)

---

(2) 1 Metaphysical problems—the nature of knowledge chief stress on consciousness rationality, ontology idealism metaphysicality 2 Physico psychological problems—the nature of the brain the reactions of the nervous system the psycho physiology of mental states, the mechanistic and reflex nature of the organism chief stress on activity, sense organs physiology and neurology materialism, physicality
3 Psychological problems—the dynamic nature of mind the complexity of behaviour patterns, mental mechanisms an analysis of emotions

विषय एकजातीय होने पर भी भिन्न २ शास्त्रोंमें भिन्न २ दृष्टि के अनुसार विभिन्न प्रकार के विचार दिख पडते हैं (३) इस प्रबंधमें प्राचीन सिद्धांत प्राचीन पद्धतिसे ही प्रतिपादित किया जायगा।

अद्वैत सिद्धांत के प्रतिपादन मे यह प्रदर्शित करना आवश्यक है कि विविध पदार्थों की सत्ता स्वतंत्र नहीं किन्तु परतंत्र अर्थात् अन्य सत्ता के अधीन है। पदार्थ समूह सत्ता और भान के लिये जिसके अधीन है वह तत्व किसी का सापेक्ष नहीं किन्तु स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश है इसका विवेचन होनेसे उस तत्व का अद्वैतत्व प्रतिपन्न होगा, क्योंकि जो जिस सत्ता के अधीन है वह उस सत्ता का भेदक नहीं हो सकता। यह एक रीति है। अथवा दुसरी रीति यह है कि प्रथमतः स्वतःसिद्धत्व स्वप्रकाशत्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् वह नित्य अनन्त स्वरूप है सर्व

drives, purposes, desires; chief stress on abilities, individual differences, personality types, environmental factors; psycho-sociology, humanism.

(3) दृष्टांतस्वरूप, जिस Voluntary movement को, Physicist "a link in a series of displacements of mass-particles कहते है, उस को Physiologist, "a combination of muscular contractions initiated from a centre in the cortex of the brain" कहते है, यदि पुन: Psychologist के निकट "a step to the satisfaction of a felt want" रूपसे विवेचित होता है।

पदार्थ उसके अधीन हैं यह सिद्ध होनेसे उस तत्व का अव्दैतत्व प्रतिष्ठित होगा। इसके पश्चात् यदि यह प्रतिपादित हो कि उस अव्दैत सत्तामें विभक्त प्रतिभास वास्तवमें नहीं है तो केवलाव्दैतसिद्धान्त प्राप्त होगा। तात्पर्य यह है कि, उसी की सत्ता से सर्व सत्तावान है, उसी के प्रकाश से विश्व प्रकाशित है, केवल इतनाही निरूपित होनेसे वह अव्दैत सविशेष या वास्तव-धर्म-सहित होगा अर्थात् विशिष्टाव्दैत होगा। अत विशेषणरहित एकरस तत्व का प्रतिपादन करना हो तो यह प्रदर्शन आवश्यक है कि अशेष पदार्थ एक ही सत्तासे सत्तावान, एक ही भानसे भासित है, परतु उस तत्वमें किसीभी पदार्थ का वास्तवमें अस्तित्व नहीं है। अर्थात् केवलाव्दैत निरूपण के लिये तत्व ऐसा होना चाहिए कि जो स्वत सिद्ध है जिसमें सर्व पदार्थ है परतु वह पदार्थ तात्विक या पारमार्थिक नही है.

पदार्थ दो प्रकारके है। ज्ञान और ज्ञेय। ज्ञानही ज्ञेयके सबधसे ज्ञातारूप होता है। इनमें यदि ज्ञानको मूलरूपसे विवेचन किया जावे और वह एक एसा प्रतिपन्न हो और ज्ञेय उसका परिणामरूप अभिव्यक्ति हो, तो चेतनाव्दैत सिद्ध होगा। यदि जड (ज्ञेय) को मूलरूप माना जावे और चेतन (ज्ञान) उसकी परिणामरूप अभिव्यक्ति है ऐसा प्रतिपादित हो, तो जडाव्दैत सिद्ध होगा। परतु केवलाव्दैतवादियों को यह दोनो मत मान्य नही है। केवलाव्दैतमतमें जड, चेतनका परिणाम नहीं और चेतन, जडका परिणाम नही। यह भी मान्य नहीं कि, जड, चेतन से स्वतत्र पदार्थ है।

चेतन और जड ये विरुद्ध स्वभावके होनेसे भी जडपदार्थ सत्ता और भान के लिये चेतन की अपेक्षा रखता है। चेतन द्वारा विषयरूपसे प्रतिभात दृश्यपदार्थ (जड) की सत्ता–स्फूर्ति चेतन विना सिद्ध नहीं हो सकती। स्वयं सत्ता और स्फूर्ति का अभाव होनेके कारण जडकी पृथक् सिद्धि नहीं हो सकती। स्वतःसिद्ध होनेके कारण चेतन किसीका गुणभूत नहीं है अतः वह जडका परिणामरूप नहीं। साक्षीरूप होनेके कारण चेतन का विकार नहीं है। अतः अद्वैतवादियों को यह भी सम्मत नहीं कि वह जडरूपसे परिणत हुआ है। सुतराम् केवलाद्वैत प्रतिपादन की रीति यह है कि— जड पदार्थ चेतन–सत्ता–भानसे सत्तावान और भासित है यह प्रदर्शित करना पश्चात् जडका मिथ्यात्व प्रतिपादन करना। अर्थात् एक अखंड चेतनमें जड प्रपंच के मिथ्यात्व निश्चय पुरस्सर ही सद्रूप चेतन का आनन्त्य प्रतिपादित होता है। यद्यपि परिणामवादमें एक ही कारण सिद्ध होनेसे अद्वैतत्व प्रतिपन्न होता है तथापि एकरस ब्रह्मात्मैक्य केवल उपरालिखी रीतिसे ही प्रतिष्ठित होगा।

उल्लिखित दो रीतियोंमेंसे प्रथम रीति अनुसार अद्वैतत्व प्रतिपादन के लिये जाग्रत अवस्थाका विवेचन करके यह निरूपन करना है कि उत्पत्तिविनाशशील ज्ञान से व्यतिरिक्त बाह्य पदार्थ हैं; इन पदार्थों का ज्ञान उत्पन्न होनेके पूर्व वे अज्ञात रहते हैं; अज्ञात और ज्ञात दोनो अवस्थाओंमे वे एकही प्रकारसे प्रकाशित है। यथार्थ ज्ञान और यथार्थ ज्ञेय की समान अयथार्थ-

ज्ञान और अयथार्थ ज्ञेय भी उसी प्रकाशसे प्रकाशित है । वह प्रकाश सर्वत्र अनुस्यूत एक अखड सत्स्वरूप है । यह सिद्धान्त स्वप्न सुषुप्ति अवस्था के विचार व्दारा भी सिद्ध होना चाहिये । इसके पश्चात् सर्वविधभेदवर्जित चिद्वस्तुमें विवेकदृष्टिसे जिनकी स्वरूपत विद्यमानता असभव है उन जड पदार्थोंका अस्तित्व और प्रतिति कैसे सभव हो सकती है इसकी युक्ति चेतन की दृष्टिसे प्रदत्त होगी (४) द्वितीय रीतिके अनुसार इस प्रबधमें यह प्रतिपादित करना है कि एक स्वत सिद्ध स्वप्रकाश तत्व है । अशेष पदार्थ उससे स्वतत्र भिन्न नहीं किन्तु उसीकेही अधीन हे, वे सब पदार्थ सत्य नहीं । एसी तात्विक व्दैतरहित सद्वस्तु अव्दैत है ।

(४) प्रथम रीतिके अनुसार विवेचनके लिये बहुत विस्तार करना होगा वह अद्वैतसिद्धान्तविद्योतन ग्रन्थमें प्रगट करनेका विचार है । इस ग्रन्थमे २० अध्याय होंगे (दो भाग). प्रत्यक अध्यायमे प्रतिपाद्य विषय सम्बधी प्राच्य विभिन्न दार्शनिक मत सयुक्तिक प्रदर्शित होंगे, पूर्वपक्ष खण्डन पुर सर अद्वैतसिद्धान्त विशेषरूपसे (बहुविध युक्तितर्क द्वारा) द्योतित (प्रकाशित) होगा ।

प्रथम अध्याय

ज्ञान स्वरूप विचार

(क) सर्वप्रसिद्ध अनुभव या ज्ञान विचारका प्रारम्भस्थल है:-

विचारका प्रारम्भ ऐसेही कोई पदार्थके अवलम्बनसे होना उचित है की जिसमे मतभेद न हो। ऐसा पदार्थ है अनुभव। अनुभवका स्वीकार न करनेसे कुछ भी सिद्ध होना संभव नहीं है। "यह मेरा ज्ञात है" 'यह मेरा अनुभूत है" इस प्रकार अनुभव या ज्ञान प्रसिद्ध है। विवेचन इसका करना है कि यह ज्ञान स्वतः सिद्ध है या परतः सिद्ध है। ज्ञान असिद्ध न होनेसे वह उक्त उभयकोटीके अन्तर्गत होगा। अनुभव सर्व सम्मत होनेसेभी उसका स्वरूप विषयक मतभेद है (१)

(१) अनुभवविषयक मतभेद —ज्ञान वेद्य और अस्वप्रकाश है (न्यायवैशेषिक)। ज्ञान अस्वप्रकाश नही या अपर द्वाराभी ज्ञेय नही, किंतु वह स्वप्रकाश है, स्वप्रकाशका अर्थ यह है कि आपनही अपना विषय हो, ज्ञान निराश्रय क्षणिक आदिमान है (बौद्ध)। ज्ञान स्वप्रकाश, अपना और परका प्रकाशक, आत्माश्रित जन्मादिवान है (प्रभाकर मीमांसक)। ज्ञान स्वप्रकाश परतु जन्मादिमान नहीं है, वह सधर्मक है उसमे वेद्यधर्म (जीवका सतत उर्ध्व गमनादि धर्म) है (जैन)। ज्ञान स्वप्रकाश, उसमे वेद्यधर्म नही है परतु वह परिच्छिन्न है (सांख्यपातञ्जल)। अद्वैतसिद्धान्तानुसार ज्ञान वेद्य या अस्वप्रकाश नही किंतु स्वप्रकाश अर्थात् अवेद्य अथच अपरोक्षव्यवहारयोग्य है, स्वप्रकाशका अर्थ आपनही आपनका विषय ऐसा नही किंतु स्वत ही प्रकाश(प्रकाश्य नही ऐसा अर्थ है)। स्वप्रकाशज्ञान क्षणिक या आदिमान नही है किंतु अनादि है। ज्ञान निराश्रय जन्मरहित धर्मरहित तथा परिच्छेदरहित है।

इस हेतुसे वह विचारका विषय होता है। संदिग्ध विषयही विचार्य होता है। पदार्थ अधिगत होनेसे किंवा अनधिगत होनेसे संशय नहीं होता। अधिगत वस्तु निर्णीत होनेसे और अनधिगत वस्तु अदृष्ट होनेसे तद्विषयक संशय नहीं होता। अतएव विचार कालमें ज्ञानका स्वरूप सम्पूर्णरूपसे अज्ञात या सर्वथा विज्ञात न रहनेसे उसके स्वरूप निर्णयार्थ विचार आरब्ध होता है।

(ख) ज्ञान अज्ञात या ज्ञात होकर विषयका सिद्धिप्रद नहीं है:—

यदि ज्ञान स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश न माना जावे तो कहना होगा कि वह ज्ञात होकर अर्थात् किसी अन्य द्वारा प्रकाशित होकर विषयका साधक होता है या अज्ञात (अप्रकाशित) रहकरही साधक होता है। स्वतः प्रकाश न हो तो परत प्रकाश या अप्रकाश होना चाहिये। ज्ञान अज्ञात रहकर स्वविषयका साधक होता है यह कल्पना समीचीन नहीं है। यदि ऐसा होता तो ज्ञानके विषयमें प्रमाण न रहनेसे ज्ञानके स्वरूप सत्ताकीहि सिद्धि न होता। तब वह अन्य विषयोंको कैसे सिद्ध कर सकेगा? किसी भी पदार्थ के सत्ता का निश्चय होनेके लिये उसका प्रकाश होना आवश्यक है। यदि ज्ञानका प्रकाश न रहे तो "वह है" ऐसा निश्चय नहीं हो सकेगा। यदि प्रकाश न होनेसे भी सत्ता का निश्चय होगा तो असत्ताका भी निश्चय क्यों न हो? अतः ज्ञान की सत्ता के निश्चय होनेके लिये वह अप्रकाशित रहना योग्य (संभव) नहीं है। ऐसा कहीं दृष्ट नहीं कि स्वय अप्रकाशमान किन्तु अन्य

विषयोंका प्रकाश कर सके । क्योंकि स्वयं असिद्ध होकर अन्य का साधक कैसे होगा? यदि ज्ञान प्रकाशित न हो, तो स्वत अप्रकाशरूप विषयका भी प्रकाश नहीं होगा। विषय और ज्ञान यह दोनो अप्रकाश होनेसे जगत की भी अप्रसिद्धि (आन्ध्य) हो जायगी । अतएव ज्ञान अज्ञात होकर विषयोंका साधक है यह पक्ष संगत नहीं है ।

यह कल्पना भी ठीक नहीं कि ज्ञान ज्ञात अर्थात् अन्य द्वारा प्रकाशित होकर विषयोंका साधक होता है। इस पक्षमें ऐसा मानना होगा कि प्रथम ज्ञान के समान ज्ञानका प्रकाशक कोई द्वितीय ज्ञान भी ज्ञात होकर ही स्वविषयोंको सिद्ध करता है। और द्वितीय ज्ञान के प्रकाशके लिये किसी तृतीय ज्ञान की आवश्यकता है और उस तृतीय ज्ञान को भी ज्ञात ही कहना होगा क्योंकि ज्ञात ही विषयके साधनमें समर्थ है । पुनः उसके साधकरूप चतुर्थ ज्ञान की अपेक्षा होगीही और वह भी ज्ञात ही होगा । इस प्रकार पूर्वपूर्व ज्ञान उत्तरोत्तर ज्ञान का सापेक्ष होनेसे ज्ञानधारा अविराम चलती रहेगी और ज्ञानधाराका विराम न होनेसे अनवस्थिति दोष होगा (२) अत यह मानना ठीक नहीं कि ज्ञान ज्ञात होकर ही विषयोंका साधक होता है ।

(ग) पूर्वपक्षिकर्तृक अनवस्थादोषपरिहार और सिद्धान्तीकर्तृक उसका खण्डन —

पूर्वपक्ष—अनवस्था दोष तब होगा कि जब सब ज्ञान अवश्य वेद्य

(२) प्रागलोपाविनिगम्यस्य प्रमाणापरमैर्भवेत्। अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्सस्य निर्दोषता (खण्डन खण्ड खाद्य)

माना जावे। हम सब ज्ञान का अवश्य वेद्यत्व स्वीकार नहीं करते। अत वह दोष नहीं है। (न्यायवैशेषिक)

सिद्धान्त—अनवस्थाकी निवृत्ति के लिये पूर्वपक्षी को यह कहना होगा कि एक ज्ञान ऐसा है जो अन्य को सिद्ध करता है और वह स्वय अन्यज्ञान का अविषय है। इस प्रकार जो ज्ञान ज्ञात नहीं होगा उसका सत्त्व नहीं होगा क्योंकि उस विषयमें कोई प्रमाण नहीं है।

पूर्वपक्षी—जिज्ञासा होनेसे वह भी ज्ञात होगा

सिद्धान्ती—ऐसा कहना उचित नहीं क्योकि अज्ञातगोचर जिज्ञासा हो नहीं सकि। जिज्ञासाके लिये वह ज्ञान सामान्यरूपसे ज्ञात होना चाहिये। अत पूर्ववत् अनवस्था दोष है। इसके अतिरिक्त यह भी है कि यदि जिज्ञासित ज्ञान [व्यवसाय] ग्राह्य होगा तो अन्योन्याश्रय दोष होगा। अज्ञातमें जिज्ञासा नहीं होती। जिज्ञासा के लिये ज्ञानका ज्ञान मानना होगा, तब जिज्ञासा होगी और आप कहते है कि जिज्ञासा होनेसे ज्ञानका ज्ञान होगा अर्थात् जिज्ञासित (ज्ञानको जानने की जो इच्छा उसका विषयभूत) ज्ञान ही ग्राह्य और ज्ञान जिज्ञासित होनेके लिये ज्ञानकी ग्राह्यता आवश्यक है। इस रीतिसे ग्राह्यतासे जिज्ञासा और जिज्ञासासे ग्राह्यता यह अन्योन्याश्रय दोष है। अत उक्तपक्ष समीचीन नहीं है।

(घ) ज्ञान स्वत सिद्ध स्वप्रकाश है:—

उक्त विचार द्वारा प्रतिपन्न हुआकि ज्ञान की प्रकाशरूपता न हो तो जडत्वापत्ति या असत्त्वापत्ति दोष होता है और उसे परप्रकाश माननेसे अनवस्था दोष होता है। अनवस्था होनेसे मूलभूत प्रथम

ज्ञानकी ही असिद्धि होगी और ऐसा होनेसे उसके विषय की भी सिद्धि नही होगी और जगतके अप्रसिद्धिका प्रसंग आयगा। सुतराम् ज्ञान अज्ञात या ज्ञात होकर विषयका साधक नही होता। पर ज्ञान द्वारा पदार्थोंकी सिद्धि होती है। अतमें मानना होगा कि ज्ञान की स्वरूपसिद्धि और प्रतीति-सिद्धि स्वतः ही है। असिद्ध और परतः सिद्ध न होनेसे (और दुसरा कोई प्रकार असंभव है) ज्ञान स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश है। अन्य प्रकाश की अपेक्षा न रखते हुए जो अपने प्रकाशसे सबका प्रकाशक है वही स्वप्रकाश कहलाता है। स्वप्रकाश होनेसे वह अप्रकाशित नही है। जो अप्रकाशित है उसको स्वप्रकाश नही कह सकते। वह प्रकाश्य भी नही। अन्य कोई उसका ग्राहक न रहनेके कारण वह अविषय है। अविषय होनेसे उसे अन्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं हैं। इस लिये अनवस्था नहीं (३)

(ङ) अधिक प्रतिपादन और विक्षपमे नानादोष प्रदर्शनः—

ज्ञान घटादि की समान वर्तमान होकर अप्रकाश नही पाया जाता। यदि ऐसा हो, तो मानना पडेगा कि उसका प्रकाश अन्यके अधीन है। यदि ज्ञान घट की समान अन्य ज्ञान का विषय होवा, तो वह विषयरूपसे ही भासित होता न की विषयीरूपसे। परंतु

---

(३)अनवस्था ज्ञप्तौ वा उत्पत्तौ वा? नाद्यः ज्ञप्त्यन्तरानभ्युपगमात्, नोत्पत्तौ विनाशान उत्पत्तेः व्यभिचारात्।

(श्री रघुनाथकृत खण्डन मणिभूषा—अमुद्रित)

भासित तो होता है विषयीरूपसेही। अत उसका विषयमे वैल क्षण्य होनेके कारण ज्ञान का अविषयत्व ही स्वीकार करना पडेगा। ज्ञान और विषय विजातीय ह, परतु ज्ञान ज्ञानका विजातीय नही है। विषय–विषयी भाव विजातीयों मे ही पाया जाता है। अतः ज्ञान अन्य ज्ञान का विषय नही हे। अनुभाव्य पदार्थ अननुभूतिरूप (अस्वप्रकाश) होता हे ऐसी व्याप्ति होनेसे जो अनुभव अनुभाव्य नही है उसमे अनुभाव्य पदाथो के समान अस्वप्रकाशत्व की सभावना नही की जा सकती। अत उस अनुभव का अस्वप्रकाशत्व अनुमानगम्य भी नही है। अत ज्ञान स्वप्रकाश है।

उपर निर्देश किया हे कि यदि ज्ञान अन्यज्ञान द्वारा ज्ञेय होगा तो ज्ञानधारा का विराम नही होगा। ऐसी ज्ञानधारा अनुभवसिद्ध भी नही है। यदि इस प्रकार ज्ञानधारा चलती रहे तो अन्य विषय के ज्ञान को अवसर ही नही रहेगा। और बाह्य व्यवहार लुप्त होगा। एक ज्ञान के लिये समस्त जीवन का काल भी पर्याप्त न होगा। ज्ञानधारा की संतति होनेसे विषय ज्ञान पुन उस विषय ज्ञान का ज्ञान, इसरीतिसे चलता रहेगा। इस प्रकार विषयावगाहि ज्ञान का अभाव नही होगा। सुतराम् सुषुप्ति और मूर्च्छा भी नही हो सकेगी। उस ज्ञान विषयक ज्ञान की धारा का यदि विराम हो तो वह अतिम ज्ञान स्वयप्रकाश नही ऐसा माननेसे उसमे सशय उत्पन्न होगा या उसकी असिद्धि होगी। सशय होनेसे उसके पूर्व (निम्नमुखी) सर्व ज्ञान सशयरूपी हो जावेंगे और विषयमें भी संशय होगा क्योंकि विषयीमे सशय होनेसे विषयमे भी सशय होता है। परतु ऐसा सशय पाया

नहीं जाता। यदि उक्त अन्तिम ज्ञान असिद्ध होगा तो उस ज्ञानसे विषय पर्यन्त सर्व असिद्ध हो जायेंगे (४) यदि इन दोनो दोषोंकी निवृत्ति के लिये अन्त्यज्ञान को स्वप्रकाश माना जावे तो ज्ञानका स्वप्रकाशत्व सिद्ध होगा। स्वविषयक अन्यज्ञान न रहनेपर भी जैसा निरपेक्ष अन्तिम ज्ञान स्वतः प्रकाशमान और अन्य की सिद्धि करनेवाला है वैसा प्रथम ज्ञानभी स्वतः सिद्ध और विषयोंके प्रकाशमें अन्य की अपेक्षा न रखनेवाला है। अतः लाघवत प्रथम ज्ञान ही स्वप्रकाश मानना चाहिये (५) यदि ज्ञान अस्वप्रकाश होता तो जिज्ञासु पुरूषको ज्ञानके रहते हुए भी ज्ञानके अभावका ज्ञान या ज्ञानविषयक संशय भी होगा। परंतु ऐसा न होनेसे विदित होता है कि ज्ञान का प्रकाश अन्य की अपेक्षा नहीं रखता किन्तु स्वयप्रकाशरूप है (६)

---

(४) उत्तरासिद्धया पूर्वासिद्धौ विषयासिद्धि पर्यन्त व्यसनमापद्येत।

(खडनखंडखाद्य-टीका-अमुद्रित-अज्ञातनामा लेखककृत)

(५) यद्यनुव्यवसायाः प्रोच्यन्ते तदा अनवस्था विषयान्तरसञ्चाराभावः अननुभवश्च तद्विरामे विषयपर्यन्त संशय इत्यगत्याज्ञानं स्वप्रकाशमेषितव्यं

(खण्डनखण्डखाद्य शांकरी टीका)

(६) ज्ञानान्तरवेद्यत्वे ज्ञानस्य ज्ञानान्तरेण कः सम्बन्धः? न तावत् संयोगः अद्रव्यत्वात्, नापि समवायः आत्मगुणयोरन्योन्य तदयोगात्, नापि तादात्म्य भिन्नयोरभिन्नयोर्वा तादात्म्यायोगात्, नापि विषयविषयीभावः तस्य द्रव्याद्यन्तर्भावानन्तर्भावाभ्याम् असम्भवात्। न चासम्बद्धमेव ज्ञानं ज्ञानान्तरज्ञेयम् अतिप्रसंगात्।

(खण्डनखण्डखाद्य विद्यासागरी टीका)

उल्लिखित विचार द्वारा सिद्ध हुआकि ज्ञान ज्ञानान्तर द्वारा ज्ञेय नही है अन्यथा अनवस्थादि दोष होंगे । स्वसत्तासे प्रकाशमान होनेके कारण ज्ञान के लिये ज्ञानातरकी अपेक्षाका कल्पना भी नहीं की जासकती । ज्ञान स्वज्ञेय भी नही, क्योंकी स्वय ही विषय और स्वय ही विषयी यह विसगत है। स्वय ही अपना वेद्य होनेसे जो कर्म है वही कर्ता होगा । परतु कर्ता और कर्म एक नही हो सकते। एकही क्रियाके प्रति कर्ता साधनरूपसे गौण होता है ओर कर्म फलरूपसे प्रधान होता है। युगपत् एक क्रियाके प्रति एकही का गुण-प्रधानभाव नही हो सकता। कर्तृत्व (*इतरकारकाप्रयोज्यत्व*) और *कर्मत्व* (*इतरका रकप्रयोज्यत्वरूप*) विरोधी धर्म है। विरुद्ध धर्मद्वयका एकत्र समावेश असभव है। सपूर्ण अभेदमे विषय-विषयीभाव सबध नही होता। अभेद सबध नही है। सबध भेद गर्भित होता है । यदि अभेद सबध हो तो रूपमे रूपवैशिष्ट्य (रूपमे रूप है ऐसा) प्रत्यय होगा। यह कहना उचित नहीं कि एकके अश–भेदसे ग्राह्य–ग्राह क भाव होता है। ग्राहकाशका ग्राह्यत्व होनेसे पुनः दुसरे अशकी कल्पना करनी होगी, इस प्रकार अनवस्था होगी (७) ग्राहका शका स्वयप्रकाशत्व होनेसे वही चेतनरूप प्रकाश होगा, अन्य अ-श जड होगा। अत स्वप्रकाश का अपनेमे विषयविषयीभाव नही

(७) सर्वस्य चैतन्याविषयत्वात् न किञ्चित् चैतन्यसाधकमिति स्वप्रभावात् स्वतत्र । ग्राहकस्य ग्राह्यत्व अनवस्थानात्।
(*आनदपूर्ण विद्यासागरविरचित न्यायकल्पलतिका=बृहदारण्यक–भाष्यवार्तिक* टीका—अमुद्रित)

हो सकता। जो विषय है वह सापेक्ष है और जड है, वह प्रकाशका स्वरूपभूत नही हो सकता। अतएव ज्ञानको स्वज्ञेय नहीं कह सकते (८) ज्ञान अज्ञेय (अभासमान) भी नहीं, कारण वह स्वत सर्व जीवको अनुभवसिद्ध है। असदिग्ध होनेसे वह अनुमेय भी नहीं। परिशेषत ज्ञान स्वप्रकाश है। जो ज्ञेय नहीं परतु भासमान है वही स्वप्रकाश है। ज्ञान अपना या अन्यका विषय न होकर भी अपरोक्ष व्यवहारका हेतु होता है। अन्य वस्तु अपेक्षा ज्ञानका स्वभावभेद होनेके कारण ज्ञान विषयक ज्ञान न होकर भी ज्ञनविषयक व्यवहार (जानामि भाति इत्यादि) होता है। ज्ञानके व्यवहारमें तदभिन्न प्रकाशही हेतु है, तद्विषय हेतु नहीं (अर्थात् वह विषय नहीं होता)। ज्ञानव्यवहारमे ज्ञानही व्यवहार्य और प्रकाश है, उसका विषयत्व प्रयोजन नहीं है।

(च) धाराज्ञान विचारः—

घटादि ज्ञानधाराके अनन्तर एतावत्काल घटको अनुभव कर रहा हू इस प्रकारसे घटादि ज्ञानधारा और उसके आश्रयरूप अहकारका अनुसधान होता है। यह अनुसधान पूर्वानुभजन्य है।

---

8 (a) If, however the absolute is to appear to it self, it must on its objective side be dependent on something foreign But this dependence does not belong to the absolute itself but merely to its app earance (Schelling's Works)

(b) In so far as consciousness is an object of consciousness it is no longer consciousness (Gentile's "Theory of Mind as Pure Act)

अननुभूत पदार्थ मे स्मृति असंभव है। इस स्मृतिकी उपपत्ति देनेके लिये कैसा ज्ञान मानना उचित है उसका विवेचन किया जाता है। घटगोचर धाराज्ञान द्वारा उक्त स्मरण नहीं हो सकता। धारा और धाराश्रय धाराज्ञानके विषय नहीं है, घट ही धाराज्ञानका विषय है। अतएव इस धाराज्ञान द्वारा इस ज्ञानकी अविषयरूप जो धारा और उसका आश्रय इन उभयोंका स्मरण नहीं हो सकता। ज्ञान स्वविषयमे स्मृति उत्पादन करता है। अतएव ज्ञान या तदाश्रय घटादिगोचर धाराज्ञानका विषय न होनेसे उक्त धाराज्ञान द्वारा उक्त स्मृतिकी उपपत्ति की नहीं जा सकती। सुतरां तदतीत अपरज्ञान मानना होगा। धारा और उसके आश्रयके साक्षी अहंकारधर्मातिरिक्त अनुभव विना तत्कालमे उक्त अनुसंधान उपपन्न नहीं है। वह अनुभव स्वप्रकाश है। स्वप्रकाश-पक्षमे उक्त अनुपपत्ति नहीं होती। स्वप्रकाश-पक्षमे तत्तद् घटादि ज्ञानसे अथवा तत्तद्घटादि-ज्ञानजन्य तत्तद्ज्ञान-विषयक तत्तद् संस्कारसे एक स्मृति होनेसे अनेक वर्णावगाहि एक स्मृतिसे जैसी तावत्वर्णका स्मृति होती है ऐसेही चरमक्षणीय एक स्मृतिसे तावदनुभवकी सिद्धि होगी। तात्पर्य यह है कि स्वप्रकाश-पक्षमे घटज्ञानक संस्कारके लिये अपरज्ञानकी (घटज्ञानके ज्ञानकी) आवश्यकता नहीं है; स्वप्रकाश ज्ञानही स्वविषयक और स्वविषय-विषयक संस्कारका जनक है। (९) अतएव धाराविच्छेद न

(९) नचनित्यानुभव नाशाभावाद् कथसंस्कारोदय इतिवाच्यम् तद्विषयी भूत तत्तद् ज्ञाननाशात् तदुपपत्तेः (अद्वैतमुक्ताकाति अमुद्रित)। वेदान्तशास्त्रमे प्रकृत विषयसंबधी त्रिविध मत है। एक पक्षमे घटविषयक वृत्ति नाश द्वारा जो संस्कार होगा वह जैसा घटविषयक होता है ऐसा अहविषयक

होनेसे भी ज्ञानसस्कार हो सकेगा और चरम क्षणमे सादृश सस्कारजन्य एक स्मरण भी हो सकनेसे धाराविषयक तावदनुवको सिद्धि होती। अतएव प्रतिपन्न हुआकि ज्ञान ज्ञानद्वारा प्रकाशित नहीं है किंतु स्वप्रकाश है.

(छ) अद्वैतवादिसम्मत स्वप्रकाश शब्दका अर्थ—

स्वप्रकाश अर्थ स्वविषय नहीं है किंतु प्रकाशातर के सबध विना प्रकाशमान है अथवा स्वव्यवहारमे स्वातिरिक्त ज्ञानान्तरकी अपेक्षा-रहित है। दृष्टात–जैसे तेज (आलोक अपने अविरुद्ध (तमोव्य-तिरिक्त) विषयोंके चाक्षुष ज्ञानमे तेजरुपसे कारण होता है (स्वमे और विषयमें), तेज अपने अतिरिक्त अपने अविरुद्ध विषयके चाक्षुष ज्ञानमे केवल तेज रुपसे नहीं किंतु विषयसंबधी तेजरुपसे कारण होता है (केवल विषयमे), स्वविषयक ज्ञानमे अभेदरुपसे कारण होता है (केवल स्वमे)। इस रीतिसे व्यवहर्तव्यका जो ज्ञान वह व्यवहार मात्रमें प्रकाशस्वरूपसे कारण है (ज्ञान और विषय दोनोंमें), अपने अतिरिक्त विषयके व्यवहारमे तद्विषयक प्रकाशरूपसे (केवल विषय मे) कारण है, और स्वव्यवहारमें अपनेसे अभिन्न प्रकाशरूपसे कारण है। अत ज्ञानका प्रकाशत्व विषयत्व - प्रयुक्त नहीं होता किन्तु ज्ञान - स्वरूप - विशेष - प्रयुक्त प्रकाशत्व होता है। ज्ञान

और वृत्तिविषयक भी होते है। संस्कारकी प्रयोजकता (यद्वृत्त्यवच्छिन्न यत्प्रकाशते—वह प्रयोजक है) उत्त प्रथम तुल्य है। अतएव अह आकारवृत्ति न माननेसे भी नित्य साक्षीद्वारा उनका स्मरण उपपन्न होगा। अपर दो पक्षम वृत्ति मानी जाती है। एकमे अन्त करणवृत्ति अपरमे अविद्यावृत्ति।

अपने अविषयरूप अपने स्वरूपमें व्यवहारका प्रवर्तक होता है। ज्ञान अपने सजातीय अन्य ज्ञानकी अपेक्षा—रहित होकर व्यवहार-गोचर होनेसे और परत्र व्यवहाका हेतु होनेसे स्वतः सिद्ध है। अविषय होकरभी प्रकाशमान होनेसे ज्ञान संबंधमे संशय नही होता।

(ज) स्वप्रकाशत्व विचारका विषय होः—

स्वयं—प्रकाश ज्ञान स्वयंप्रकाश—विषयक अनुमानका गोचर होनेपर भी उसका स्वयंप्रकाशत्व अव्याहत रहता है। वृत्तिका विषय होनेसेभी वह स्फुरणका अविषय है। यह नही की, प्रमाणका विषय होनेसेही उसकी दृश्यता होगी। दृश्य वही होता है जो अपने से भिन्न संवित् की नियत अपेक्षा रखता है। ज्ञान वैसा नही है। अथवा शशविषाण अविषय होनेपर भी उसमें जैसे प्रमाण द्वारा विषयत्व का निषेध किया जाता है वैसे अविषय ज्ञानमे भी प्रमाण-द्वारा उससे भिन्न ज्ञानकी अपेक्षा निवारित होती है। अत.उक्त प्रमाण, ज्ञान के स्वप्रकाशत्वके प्रतिपादनमे साधक होता है (१०)

(झ) स्वप्रकाश ज्ञान नित्यः—

अब ज्ञानका स्वप्रकाशत्व सिद्ध होनेके पश्चात् उसके नित्यत्व विषय का विवेचन किया जाता है। जिसका प्रागभाव (प्राक्कालीन

---

(१०) (क) नतावत्व्याघातः अनुमानगोचरस्य तदगोचरत्वाप्रसाधनात्। न च प्रमाणविषयत्वमात्रेण दृश्यता, साहिस्वातिरेकिसंविदपेक्षानियतिः, न सा आत्मनो अस्ति सुपुते अपि सिद्धेः

(ब्रम्हसूत्रभाष्यप्रगटार्थ—अमुद्रित)

(ख) निर्धर्मकेऽपि न विषयत्वादि धर्मविरोधोऽपि काल्पनिक धर्मानाम-भ्युपगमात् (तत्वदर्पण—अमुद्रित)

अभाव) है उसकी उत्पत्ति हैं और वह आदिमान है। जिसका प्रागभाव नही उसका आदिमी नही है अर्थात् वह अनादि है। अभाव विना जन्मादि सिद्ध नही होते। प्रागभाव अज्ञात होनेसे जन्मका निश्चय नही होता। ज्ञानका प्रागभाव या ध्वंस सिद्ध नही हो सकता। अपने प्रागभावकालमे और प्रध्वंस—कालमे स्वयं ज्ञान-रूप गृहिता ही नही होता। और अपने अस्तित्व--कालमें ग्राह्यभूत अपना अभाव (प्रागभाव और ध्वस) नही रहता। स्वयंप्रकाश स्फुरण अन्य स्फुरणका अगोचर होनेके कारण अन्य व्दारा उसका प्राग-भाव या ध्वंस गृहीत नही होता। अतः जैसे घटपटादि उत्पत्तिशील पदार्थोंके अभाव संवित् - साक्षीक है वैसे ज्ञानका अभाव संवित्-साक्षीक या अनुभवसिद्ध नहीं हो सकता। अतः गृहीतृ असंभव होनेसे गृहीतृसापेक्ष प्रमाण का संचार नही होगा। सुतरां ज्ञानक प्रागभाव और ध्वंस सिद्ध नही होगा। स्वतःसिद्ध स्वप्रकाशके प्रागभावादि स्वतः या अन्यद्वारा सिद्ध न होनेसे वह नित्य है। ज्ञान स्वप्रकाश होनेके कारण वह रूपरसादि की समान किसी क गुणभूत (सापेक्षधर्मरूप) नही है। गुणभूत न होनेसे वह निराश्र-य और अवधिभूत (निरवधि) होगा। वह अनित्य नहीं। अनित्य-पदार्थ सापेक्ष और सावधिक् होता है। अवधिका ग्रहण किये वि-ना अनित्यत्व निरूपित नही होता। स्वप्रकाशस्वरूप निरवधिक और सापेक्ष न होनेसे अनित्य नही है। निराश्रय होनेके कारण भी स्वप्रकाशका कारणाश्रितत्वरूप कार्यत्व (अनित्यत्व) नही हो सक-ता। निरवधि नाश की प्रसीद्धि न होनेसे सर्वावधिभूत प्रकाशके नाशका निरूपण नही कीया जा सकता। जो स्वयंप्रकाश है वह

यह सब विचार (साक्षिविवेक) अन्यत्र (अद्वैतसिद्धांत विद्योतन ग्रंथमे) प्रगटित होंगे। स्वप्रकाशरुप ज्ञान प्रकाशान्तर का अगोचर होनेसे वह स्वरुपतः या भेदादिधर्मिरुपतः मानान्तरसे सिद्ध नहीं होता, और स्वयं स्वसत्तामात्रका साधक है। भेदादिका साधक नहीं है। अतएव साधकके अभावसेही ज्ञानके भेदादि असिद्ध है। अतएव ज्ञानस्वरुप अद्वैत है।

द्वितीयाध्याय

सत्स्वरूप विचार

(क) अध्यायका प्रतिपाद्य विषयः-

ज्ञानस्वरूपका विचार हुआ । अब सत्स्वरूपका विचार करते हैं। पश्चात् ज्ञानस्वरूप और सत्स्वरूपकी एकता निरूपण करेंगे । पदार्थ, धर्म या धर्मिरूप होगा अथवा तत्त्वत. धर्मी या धर्म न होनेसेभी धर्मी या धर्मरूपसे प्रतिभात होगा । जो धर्मी या धर्म नही है वह स्वरूपतः विचारका विषय नहीं हो सकता । धर्मधर्मि-भाव अवलंबन पूर्वक विचार प्रवृत्त होता है । जो असत्सृष्ट है उसमे तर्क अवतरित नहीं हो सकता क्योंकि सत्सृष्ट ग्रहणपूर्वकही तर्ककी प्रवृत्ति होती है । जो निर्विशेष है वह स्वरूपत विचारका विषय नहीं हो सकता । यदि निर्विशेष तत्व धर्मिरूपसे प्रतिभात हो, तो कल्पित धर्मधर्मि-भाव अवलंबन पूर्वकहि विचार साधित हो सकेगा। तोभी सत् का स्वरूप कैसा है उसका विवेचन करते है, क्या वह परिछिन्न वस्तुस्वरूप है? अथवा वस्तुओंका धर्मरूप है किंवा अनुगत धर्मिरूप है? (१)

---

(१) सत्स्वरूपविषयक मतभेद है । किसीके मतमे (सांख्य पातंजल) सत् भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप है, अपरमतमे (न्यायवैशषिक) सत्ता अनुगत पराजातिरूपधर्म है । मीमासक लोग सत्को ज्ञानका सम्बन्धीत्व (प्रभाकर) या कालका सम्बन्धीत्व (भट्ट) कहते है । इसप्रकार मतभेदसे सत्व अर्थक्रियाकारिरूप (बौद्ध) उत्पादव्ययध्रौव्ययोगीत्व (जैन), वर्तमानत्व अस्तित्वरूपधर्म, विधिप्रत्ययवेद्यत्व, विचारयोग्यत्व, असत्वव्यावृत्तित्व

(ख) भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप सत् नहीं है:-

घटस्सन् पटस्सन् ऐसा बोध प्रसिद्ध है। घटपटादि पदार्थ-निमित्त जो व्यवहार वह सद्रूप त्याग न करते हुएही प्रतीत होता है। अब यह विचार्य है कि वह घटपटादि भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूपही सत् है अथवा सत् का और कुछ स्वरूप है। स्वरूप भिन्न भिन्न है। घटपटादि वस्तुस्वरूप सत् होनेसे सत्भी भिन्न भिन्न होगा। भिन्न भिन्न सत्द्वारा 'यहवस्तुसत् है' 'यहवस्तुसत् है' ऐसी अनुगत बुद्धि सुसगत नहीं है। घटादियोंकी परस्पर विलक्षणता होनेसे उसमे सन्घट· सन्पट· इत्यादिरूपसे एकाकार बुद्धि नहीं हो सकती। यदि अनुगत सद्बुद्धिका कारण अननुगत भिन्न भिन्न स्वरूप सत् होगा तो जाति आदि अनुगत पदार्थ स्वीकार निष्फल है क्योंकि सर्वत्रही मनुष्यादि अननुगत पदार्थ द्वाराही अनुगत मनुष्यत्वादि जाति-बुद्धि उत्पन्न होगी। वस्तुस्वरूपसे विलक्षण अनुगत सत् न रहनेसे अनुगत सद्बुद्धि विषयशून्य होगी। 'वही यह दीप है' ऐसा अनुगत प्रत्यय और व्यवहार रहते हुएभी वहांपर दिपज्वालाके परिमाणादिका भेदही भेदक होता है परन्तु इसस्थलमे ऐसा कुछ नहीं है। अतएव अनुगत बुद्धि होनेसे अनुगत विषय मानना उचित है। सत् सत् ऐसी प्रतीतिके अनुसार वस्तुस्वरूप सत् नहीं है। वस्तुस्वरूप सत् होनेसे भिन्नता लोप पायगी क्योंकि सबही सत्

प्रमाणविषयत्व, सदुपलम्भप्रमाणगोचरत्व, व्यपदेशविषयत्व इत्यादि है। वेदान्तमतमे सत् अखण्डज्ञान है, वह भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप या धर्मरूप नहीं है, किंतु अनुगत धर्मरूपसे प्रतिभात होता है।

है । घट सन् इसरूपसे प्रतीयमानसत्ता घटादिस्वरूप नहीं है । जैसे घटस्सन ऐसा अनुभव होता है वैसा घटघट यह अनुभव नही होता । घटादि स्वरूपही याद सत् होता तो वस्तुका द्वैरूप्य अयुक्त होनेसे वह घटादि सर्वदा सतही होते । ऐसा होनेसे उनका उत्पत्ति नाशही न होता । सर्वथा सत् होनेसे उत्पत्तिसे पहिले और नाशके अनन्तर भी उसकी उपलब्धि होती । घटादि स्वरूपही सद्बुद्धिका विषय है ऐसा कहनेके लिये घटशब्द और सत्शब्दका एकार्थत्व कहना होगा । किंतु यह अनुपपन्न है । सत् शब्दका घटादि पदसे सह प्रयोग अयुक्त है । एसा होनेसे सद्बुद्धि और घटादि बुद्धिका अवैलक्षण्य हो जायगा । सन घटः सन्घट ऐसा बोध विशेष्य विशेषण भावमूलक है । विशेष्य विशेषणस्वरूप नही होता अन्यथा विशेष्य विशेषण भावही असिद्ध है । अतएव वस्तुस्वरूप सत् नहीं है। वस्तुके साथ सबध होनेसे सत् वस्तुस्वरूप नही है । सपूर्ण अभेदमे सबध नहीं होता । "स्वरूपाना परस्परव्यावृत्तेरव्यापकत्वादलक्षण" (२)

---

(2) (a) Plurality must contradict independence If the beings are not in relation, they cannot be many, but if they are in relation, they cease forthwith to be absolute For on the one hand plurality has no meaning, unless the units are somehow taken together If you abolish and remove all relations there seems no sense left in which you can speak of plurality But, on the other hand, relations destroy the real's self-dependence For it is

(ग) सत् अस्तित्व (वृत्तित्व) आदिस्वरूप नहीं है –

सत्सत् प्रतीति सर्वत्र अस्तित्वरूप धर्मकोही विषय करती है ऐसा कहना उचित नही है । अस्तित्वको किंचित् सबंधसे वृत्तित्व-रुप कहना आवश्यक है । यदि वह समवाय सबंधसे अवछिन्न वृत्तित्वरुप होगा तो नित्य द्रव्यमे नही रहेगा क्योंकि नित्य द्रव्य

---

impossible to treat relations as adjectives, falling simply inside the many beings. And it is impossible to take them as falling outside somewhere in a sort of unreal void, which makes no difference to any thing. Hence ... the essence of the related terms is carried beyond their proper selves by means of their relations And, again, the relations themselves must belong to a larger reality To stand in a rela tion and not to be relative to support it and yet not to be infected and undermined by it seem out of the question Diversity in the real cannot be the plurality of independent beings

(Bradley's "Appearance and Reality ' Ed I)

(b) The realist's many beings, as defined are defined as wholly disconnected, and they must remain so You cannot first say of them, for instance, that they are logically independent and then truly add that nevertheless they are really and causally linked No two of them are in the same space, for space would be a link And just so, no two are in the same time, no two are in physical

कहींभी कभीभी समवाय संबंधसे नहीं रहता। अथच नित्य द्रव्यमें अस्तित्व तो है। यदि अस्तित्व संयोग। संबंधावाच्छिन्न वृचित्वरुप होगा तो गुणादिमें वह वृचित्व नही रहेगा क्योंकि गुण संयोगसंबधसे नही रहता (द्रव्यकाहि संयोग होता है नकि गुणक्रियादिका (३)

---

connection, no two are parts of any really same whole The mutual independence, if once real, and real as defined, cannot later be changed to any form of mutual dependence

(Royce's "The world and the Individual" First series The four historical concep tions of Being)

(३) इसस्थलमें वैशेषिक और नव्य नैयायिक सम्मत पदार्थविभागका संक्षिप्त परिचय देते है। इससे परवर्ति विचार सुखवोध्य होगा। पदार्थ सप्तविध है, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, विशेष (परमाणुका परस्पर भेदक पदार्थ) और अभाव (प्रागभाव प्रध्वसाभाव अत्यताभाव और अन्योन्याभाव)। द्रव्य पदार्थ नवविध–पृथिवीअपतेजवायुआकाश कालदिग् आत्मामन। नित्य ओर अनित्य भेदसे द्रव्य द्विविध है। सावयव द्रव्य अनित्य, निरवयव द्रव्य नित्य। परमाणु नित्य, कार्य अनित्य। पृथिव्यादि चार भूतके परमाणु नित्य है। आकाश काल दिक् आत्मा मन सभा नित्य द्रव्य है। रुपरसादि गुण चतुर्विंशति प्रकार है। कर्म पचप्रकार। सामान्यका अर्थ जाति। जाति अनुगत प्रत्ययद्वारा सिद्ध होती है। एकही सबधसे कोईभी वस्तु अनेक वस्तुओंमे अबाधित होनेसे उसको अनुगत कहते है। प्रत्येक घटमें 'घट' 'घट' ऐसी अनुगत प्रतीति है। यह अबाधित अनुगत बुद्धि अनुगत निमित्त जनित होती है यह मानना होगा।

यदि 'अस्तित्व' कालिक संबंधावच्छिन्न वृत्तित्वरूप होगा तो सर्व जन्य पदार्थोंका एक कालमें वृत्तित्व न होनेसे निरुपक कालभेदसे उस अस्तित्वकाभी भेद आवश्यक है। सत् सत् प्रतीति महाकाल वृत्तित्व-को विषय करती है ऐसा कहनाभी संगत नहीं है। उपाधि व्यति-रेकसे महाकाल विषयक प्रतीतिकाभी स्वरसतः अभाव होनेसे 'इदानीं अस्ति' 'तदानीं अस्ति' ऐसी प्रतीतिही आनुभविक है

अतएव सकल घटमें घटत्व जाति है। एसेही सकल द्रव्यमे द्रव्यत्व, सकल गुणम गुणत्व और सकल क्रियाम क्रियात्व सिद्ध होता है। कोईभी व्यक्तिके नाशसे जाति नष्ट नहीं होती, अपर व्यक्तिम जाति अभिव्यक्तही रहती है। अतएव वह नित्य है। जातिमे अपर जाति नही है। जाति जातिमान होनेसे अनवस्था होगी। जातिमे जाति, शेषोक्त जातिमे जाति इस प्रकारसे अप्रमाणिक असंख्य पदार्थ कल्पनाप्रयुक्त अनिष्ट प्रसंग होनेसे अनवस्था होगी। द्रव्यत्व (एतदन्तरभूत घटत्व पटत्वादि) गुणत्व (एतदन्तर्गत नीलत्वादि) और कर्मत्व जातियोंसे व्यतिरिक्त सत्ता जाति है। वह उक्त त्रयकी परस्पर व्यभिचारी नहीं है किन्तु द्रव्य गुण कर्म इन तिन पदार्थोमेही रहती है। इस हेतुसे इसको पराजाति कहते है। इस नित्य व्यापक जातिके साथ संबंध होनेकी कारणही द्रव्य गुण कर्म "है" "सत्" इत्यादि प्रतीतिगोचर होता है। यह सत्ता-सामान्य सामान्यादि चार पदार्थोमे रहती नहीं। उक्त चार पदार्थोमे सामानाधिकरण्यसें 'सत् प्रत्यय' होता है। अर्थात् द्रव्य गुण कर्म इन तिन पदार्थोमें सत्ता साक्षात्संबंधसे रहती है उस अधिकरण त्रयमे सामान्यदिभी रहते है। अतएव परंपरा संबंधसे सामान्यादिमें सत्ता प्रतीति होती है (प्रत्यक्षगम्य होती है)। गुणी (द्रव्य)और गुण पृथक, द्रव्य और क्रिया पृथक, व्यक्ति और जाति पदार्थ पृथक, अथच उनकी अपृथकसिद्धि होती है; यह जिसके द्वारा साधित होता है उस संबंधका नाम समवाय है। समवाय, सर्वेन्द्रियसे पृथक पदार्थ है।

इसलिये वहांपर उपाधिभेदसे भिन्नकाल–वृत्तित्व–समूहकीहि, अवगति होती है यह स्वीकार करना होगा। अतएव आस्तित्वरुप धर्मद्वारा सत् सत् विषयक अनुगत प्रतीतिकी उपपत्ति प्रदान नहीं की जा सकती। सन् सत् प्रतीनि स्थलमे वर्तमानकाल-सम्बधित्वहि आस्तित्व है ऐसा कहना सगत नहीं है क्योंकि अस्तित्वकाही त्रैकालिक अन्वयमान होता है। सत् विधिप्रत्यय - विषयत्वरुपभी नहीं है। ऐसा होनेसे रज्जुसर्पादिकाभी सत्यत्त्वापात होगा और उसके अभावका असत्यत्वापात होगा और विभ्रमाविभ्रका विपर्यय हो जायगा। बाधाभावभी सत् नही है। इसस्थलमे विचार्य है कि आपाततः बाधाभाव अथवा सर्वथा बाधाभाव है? प्रथम पक्षमे मृगतृष्णिका जलादिमे अतिव्याप्ति होगी। उत्तरपक्षमे वह अस्मदादिके प्रत्यक्षका अगोचर है। अथच सत् अपरोक्ष है।

(घ) सत् जातिरूप धर्म नहीं है।

जात्यादिमे जाति नहीं रहती अथच उन जात्यादि पदार्थमेभी सद्व्यवहार होनेसे सत् जातिरुप धर्म नहीं (है४) विषय–वैलक्षण्यसे प्रतीतिवैलक्षण्य आवश्यक होनेसे अथच द्रव्यादिमे और जात्यादिमे सत्प्रतीतिके वैलक्षण्यका अभाव होनेसे वह जातिरूप धर्म नहीं है किंतु सर्वानुस्यूत अपर कुछ है। द्रव्यसत् गुणसत् क्रियासत् जिसप्रकार प्रतीत

(४) सत्ताच न द्रव्यगुणकर्मवृत्तिरेका प्रत्यक्षसिद्धा जातिः। धर्मादिना अतीन्द्रियत्वेन तत्र प्रत्यक्षायोगात् जात्यादावपि सद्व्यवहाराच्च। · ······ सामान्यविशेषसमवायाः निःसामान्या इत्यगीकारात् सत्तासामान्यसंसर्गासम्भवात् तेषाम् अभावत्वप्रसंगः

(श्रीरघुनाथविरचित पदार्थतत्वनिरूपण)

होता है उसी प्रकार घटमें पटत्व का अभाव सत् है, पटमें घटत्वका अभाव सत्, ध्वंस सत् ऐसा अनुभव होता है। नैयायिक मतानुसारसे अभावमें सत्ता जाति स्थित नहीं है अन्यथा सत्ता–सबधसे वहभी भावपदार्थ हो जायगी। अथच द्रव्यादि भावपदार्थमें जैसी सत्प्रतीति होती है ऐसी अभावमेंभी सत्प्रतीति होती है। अतएव सत्ता जातिरूप धर्म नहीं हे। द्रव्यादित्रयमें साक्षात् सबधसे (५) सामान्य विशेष समवाय और अभाव इन पदार्थचतुष्टयमें परपरा सबधसे सत् अवस्थित हे ऐसी कल्पनाभी सगत नहीं हे क्योंकि साक्षात् परम्परा सबध द्वयसे जो सबद्ध हे उनकी समानाकार प्रतीति सूपपन्न नहीं हें। अनुगत एकाकार बुद्धिका एकरूप सबध विषयत्वही करना उचित हे अन्यथा प्रमा प्रमेय इस बुद्धि द्वयकेसमान आकारभेद प्रसग होता। यदि इनका साक्षात् और परम्परारूप संबध होता तो उस वेलक्षण्यका भान होना आवश्यक हे। विलक्षणताके भान बिना यह विलक्षण सबधयुक्त हे ऐसा प्रत्यक्ष कैसे होगा ?। एकरूप प्रतीति एकरूप विषयसेही सिद्ध होती है। उस एकरूप प्रतीतिस्थलमें सबधका भेद और स्वरूपकी भेद कल्पना करना अनुचित है। अनेक घटमें अयघट अयघट एतादृश एकरूप प्रतीति होती हे। वह एकरूप प्रतीति घटत्वरूप एकरूप विषयसेही सिद्ध होता है। अतएव घट व्यक्तिमें उस घटत्व धर्मके सबधकी भेदकल्पना जैसे अनुचित हे वैसेहि सन् सन्

---

(५) उक्त नित्यानुगत सत्ता जातिमभी प्रमाण नहीं है। "प्रत्यक्षस्य नियतत्वादिघटिते तत्रासामर्थ्यात्, अनुमानादव्योप्याप्त्यादिग्रहआपक्षात्वन साध्य प्रसिद्धिं विना असभवात्। (गूढार्थतत्त्वालोक)

एतादृश एक प्रतीति, द्रव्य गुणकर्म इन तीन पदार्थ स्थलमे समवाय सबध-विशिष्ट सत्ताको विषय करती है और सामान्य विशेष समवाय इन तीन पदार्थोंमे सामानाधिकरण्य विशिष्ट सत्ताको विषय करती है इस प्रकार सबधकी भेद कल्पना समीचीन नही है। अतएव कहींपर साक्षात् सबधसे कहींपर परम्परा सबधसे ' सत् ' ऐसी प्रतीति उपपन्न नही होती क्योंकि विजातीय सबधसे समानाकार प्रतीति अनुपपन्न है अन्यथा सबध-भेदही सिद्ध नही होगा। तात्पर्य यह है कि यदि विजातीय सबधसे समानाकार प्रतीति होगी तो सबध का विजातीयत्वही नष्ट हो जायगा क्योंकि प्रतीति द्वाराहि सबधादि विषयका एकत्व अथवा अनेकत्व सिद्ध करना होगा। प्रकृतस्थलमे प्रतीति एकाकार होनेसे उसका विषय सबधभी एकही होगा अर्थात् विजातीयत्व नही रहेगी। औरभी, परम्परा सबधसे प्रत्यक्ष विशिष्ट बुद्धि होनेसे अतिप्रसग होगा। तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्षात्मक जो विशिष्ट-बुद्धि वह सर्वत्र साक्षात् सबधसेही होती है। वह यदि परम्परा सबधसेभी होगी तो निर्घट भूतलादिमे भी घटादि पदार्थका परम्परा सबध रहनसे वहापरभी ' घटवत् भूतल ' ऐसा प्रत्यक्ष हो जाता। अतएव परम्परा सबधसे कोईभी पदार्थकी विशिष्ट बुद्धि प्रत्यक्षात्मक नही होती। प्रकृतस्थलमे सत् सत् ऐसी विशिष्ट-बुद्धि प्रत्यक्षात्मक होनेसे, इसमे परम्परा सबध हो नही सकेगा। किंच विषयके एकरूपताका अभाव होनेसेभी यदि कदाचित् प्रतीति की एकरूपता अगीकार करोगे, तो पूर्वपक्षीके मतमे कोईभी जातिकी सिद्धि नही होगी। अतएव सिद्ध हुआकि न्यायवैशेषिक सम्मत सत्ताजाति घटस्सन पटस्सन् इत्यादि सद्व्य-

वहार की साधक नहीं है। सत् की अनुगति सबधाशमे और प्रकाराशमेभी विद्यमान है। विशेष्य, प्रकार और सबध तथा उससत्ताका सबध इन सबमे "सत्" ऐसी प्रतीति अनुगत है, परंतु सबधमे अथवा प्रकारमे सत्तारूपजाति रह नहीं सकेगी। इन उभयाशमे अनुगत व्यवहारकी उपपत्ति होनेके लिये जाति व्यतिरिक्त अपरमत् स्वीकार्य है जिसके साथ तादात्म्य प्राप्त होकर उसप्रकारसे वे व्यवहृत होते है। तात्पर्य यह कि, तार्किकमतमे अनुगत व्यवहारका अभाव प्रसग होगा। विशेषण और सम्बन्धकी अनुगति भिन्न अनुगतप्रतीति नही होती, तार्किकमतमे सबधकी अनुगति नहीं है। "घट सन्" इत्यादि अनुगत सत्प्रतीतिमे सबधके अनुगति नही है इसलिये अनुगत प्रतीति नहीं हो सकती। अनुगतप्रतीति उसी स्थलमे ही हो सकेगी जहापर विशेषण और विशेषण विशेष्यका सबध अनुगत होते। विशेषण अनुगत रहकर भी यदि विशेषणविशेष्यका सबध अननुगत हो तो अनुगतप्रतीति नहीं हो सकेगी। जैसा एकही गोत्वसामान्य समवायसबधसे और कालिक सबधसे विशेषण होनेपर प्रतीति एकरूप न होकर विभिन्न रूपही होती है। 'सन् घट:' इत्यादि प्रतीतिमे प्रत्येक व्यक्तिभेदसे विभिन्न सद्रूपता स्वीकार करनेसे विशेषण अननुगत हो जाता। सुतरा अनुगत प्रतीति नहीं हो सकी। और इस सद्रूपताको सत्ता-जातिस्वरूप कहनेसे विशेषण सत्ताजाति अनुगत होती है सत्य, किंतु विशेषण-विशेष्यका सबध अननुगत रहा। कारण, "द्रव्य सत्, गुण सन्, कर्म सन्" ऐसी प्रतीतिमे सत्ताजाति समवाय सबधसे विशेषण

होता है, और "जाति सती, समवाय सन" इत्यादि प्रतीतिमे सत्ताजाति समवायसबधसे विशेषण नही होती किंतु एकार्थसमवाय अर्थात् सामानाधिकरण्य सबधसे विशेषण होगी। सुतरा विशेषण विशेष्यका सबध अननुगत होनेके कारण प्रपचान्तर्गत घटपटादि सत् सत् ऐसी अनुगतप्रतीतिकी विषय नही हो सका। सबधकी अनुगति भिन्न अनुगत प्रतीति नही हो सकती। अनुगतरूपसे प्रतीतिमे विशेषण और सबध उभयही अनुगत होना अवश्यक है, क्योंकि उभयही प्रतीतिका विषय है। किंतु सत्स्वरूप ब्रह्म सर्वप्रपञ्चानुगत होकर भासमान होनेसे जैसा विशेषणकी अनुगति, ऐसा सबधकाभी अनुगति रक्षित होती हे। सर्वत्र प्रपंचमे सद्रूप प्रतीतिमे एक सद्रूप ब्रह्मही सर्वत्र विशेषण रूपसे प्रतीत होता, और एक सत्तादात्म्यसबधसेही प्रतीत होता है। एकमात्र सर्वानुगत सद्रूप ब्रह्मही प्रपचान्तर्गत समस्त घटपटादिमे तादात्म्य सबधसे सबद्ध होता हे इसलिये सत् ब्रह्म घटपटादिमे विशेषणरूपसे भासमान होनेका योग्य हे। (६)

(६) (क) ब्रह्मणस्तादात्म्येन विशेषणत्वाभ्युपगमे तूभयोरप्यनुगतव्यवहारोपपत्त ब्रह्मण एव तथात्व। (अद्वैतसिद्धि द्वितीय)

(ख) सन्सदिति प्रतीत्यनुगत्यैव सत्सदितिव्यवहारानुगति। तत्रैव हि प्रतीतरानुगत्य यत्र विशेषणस्य विशेष्यविशेषणसबधस्य अनुगति, प्रपञ्चान्तर्गत प्रत्येकवस्तुन. सत्स्वरूपताकल्पने विशेषणस्य अननुगम, सत्ताजात्यगीकारपक्ष विशेषणानुगमेऽपि सबधस्य अननुगम। तथाहि सदाकारप्रतीति. यदा द्रव्य गुणे कर्मणि वा तदा समवायेन सत्ताजाति विशेषणम्, यदा द्रव्यत्वादौ सदाकार प्रत्यय तदा सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन सत्ताजाति विशेषणम् इति

किंच सन्घट सन्पट इत्यादि प्रतीति घटपटादिव्यक्तिमे सत्ता व्यक्तिके अभेदमात्रको विषये करती है। उस प्रतीति द्वारा घटपटादि व्यक्तिमे सत्ता जातिका समवायित्व सिद्ध नही होता क्योंकि जो प्रतीति अभेदको विषय करती है उस प्रतीतिका निर्वाह भेदघटित समवाय सबध द्वारा नही हो सकता। इसप्रकार द्रव्यस्सन् गुणस्सन् इत्यादि प्रतीतिद्वारा एक सद्वस्तुका द्रव्यादिक सर्व पदार्थके साथ अभिन्न होनेसे उन द्रव्य गुणादिक पदार्थोंमे परस्परभी वास्तविक भेद सिद्ध नही होता, काल्पित भेदमात्र होता है। उस द्रव्यादिका वास्तवभेद असिद्ध होनेसे उस द्रव्यगुणादिक धर्मीमे सत्ताजातिरूप धर्मकीभी कल्पना नही हो सकती (७)

वक्तव्यम। तथाच विशेष्यविशेषणसबधवैलक्षण्येऽपि प्रतीते अविलक्षणत्वम अनुपपन्नमेव। सम्बधवैलक्षण्येन प्रतीतिवैलक्षण्यस्य आवश्यकत्वात् द्रव्यगुण कर्मसामान्यादिसाधारणसत्प्रतीते अनुगताया अनुपपत्ते। वेदान्तिमते तु सद्रूप ब्रह्मणि सर्वेषां द्रव्यादीना तादात्म्येन अध्यस्ततया आध्यासिकसबधस्य च सर्वत्र अविशेषात् सर्वत्र द्रव्यादिषु सत् सत् इत्यनुगतप्रतीत्युपपत्तौ न किञ्चित् बाधकम्। (अद्वैतसिद्धि बालबोधिनीटीका—बालालिपि)

(7) It is not itself a generic, but a transcendental notion Wider than all, even the widest and highest genera, it is not itself a genus A genus is determinable into its species by the addition of differences which lie outside the concept of the genus itself, being, as we have seen, is not in this way determinable into its modes

(Coffey's 'Ontology' or The Theory of Being)

अतएव सद्रूप धर्मीमे द्रव्यगुणादिक पदार्थोंकी अभिन्नत्वही अंगीकार करना उचित है। उल्लिखित विचारद्वारा सिद्ध हुआकि सत् भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप या अस्तित्वादिरूप धर्म नहीं है या जातिरूप नही है। अर्थात् सत्ता तद् तद्पदार्थभेदसे भिन्न नही है, पदार्थनिष्ठ अननुगत या अनुगत धर्मरूप भी नही है, वह अनुवर्तमान धर्मिस्वरूप एकमात्र है (८)

(ङ) सत्स्वरूप और ज्ञानस्वरूप अभिन्न है

जो चेतनस्वरूप वही पदार्थसबंधसे प्रकाशक रूपसे प्रतिभात होता है। वह प्रकाश्य वस्तु या तदीय धर्मरूप नही है। ज्ञान सर्वावधि होनेसे किसीकाभी धर्म नही है, निराकार होनेसे (क्योंकि वह सर्वावधि अविषय) घटादि भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप नहीं है। अथच वस्तु संबंधसे वोही धर्मिरूपसे अनुभूत होता है। सत् भी वस्तुस्वरूप या उनका धर्म नही है अथच धर्मिरूपसे प्रतिभात है। सुतरा सत् और चेतन अभिन्न है। यदि सत् प्रकाशस्वरूपसे भिन्न हो तो वह अप्रकाशरूप होगा। अप्रकाश होनेसे वह सत् सत इस प्रकार प्रकाशमान नही होगा सत्का अस्फुरण प्रसंग होगा। अनुगत धर्मिरूप होनेसे सत्‌चेतनका विषय या धर्मरूप नही है। सत्स्वरूप असिद्ध या परत. सिद्ध न होनेसे स्वतः सिद्ध है।

(८) सम्बन्धिभेदात् सत्तैव भिद्यमाना गवादिषु। जातिरित्युच्यतेतस्या सर्वशब्दा व्यवस्थिता॰। तान् प्रातिपदिकार्थे धात्वर्थेच प्रचक्षते। सा नित्या सा महानात्मा तामाहुस्त्वतलादय। शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते। समारम्भस्तु भावाना अनादि ब्रह्मणश्रुतम्।

(भर्तृहरिकारिका—महाभाष्यटीकाकार कय्यट कर्तृक उद्धृत)

ज्ञानभी ऐसाहीं है। ज्ञातृ-अन्तर और ज्ञानान्तरका अभाव होनेसे स्वप्रकाश की सत्यता मानना होगी। अतएव सत् और ज्ञान अभिन्न है। भिन्न होनेसे साधक-अभावसे असत् हो जाता। अतएव सत्‌चित् अद्वैतस्वरूप है।
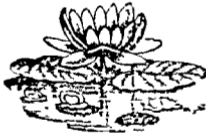
तृतीय अध्याय

ज्ञेय स्वरूप विचार

(१) प्रतिपाद्य—स्वप्रकाशज्ञान की दिकसे ज्ञेय के प्रति कल्पनानेत्रसे निरीक्षण करनेसे द्विविध पदार्थ प्रतिपन्न होगा, द्रष्टा और दृश्य। द्रष्टृचेतन ज्ञानात्मक और दृश्य पदार्थ ज्ञेयात्मक जड कहलाता है। जडका अवभासक होनेसे ज्ञप्ति ही ज्ञातृ वा द्रष्टृरूपसे उपचरित होता है। अब यह प्रतिपादन किया जायगा कि ज्ञेयात्मक जडप्रपंच स्वप्रकाश ज्ञानात्मक द्रष्टृचेतनसे भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचन नहीं किया जा सकता।

(२) ज्ञानसे ज्ञेय पदार्थ भिन्नरूपसे निर्वचनीय नहीं है—

ज्ञेयपदार्थ, ज्ञानसे स्वतंत्र रूपसे गृहीत या प्रतीत न होनेसे उसको ज्ञान–असम्बद्ध या स्वतन्त्र–भिन्न कहा नहीं जा सकता जिनके स्वरूप परस्पर असंसृष्ट है और जो पदार्थ असम्बद्ध है उनका द्रष्टृदृश्यभाव कैसे होगा ? ज्ञेय पदार्थ, ज्ञानस्वरूपसे सर्वथा भिन्न होनेसे ज्ञातृज्ञेयभावकी अप्रसिद्धि होनेके कारण जगतकीही अप्रसिद्धि हो जायगी। अत स्वप्रकाश ज्ञानसे ज्ञेयपदार्थ भिन्न रूपसे निर्वचन नहीं हो सकता। ज्ञान और ज्ञेयका स्वरूपभेद है, पर ज्ञेय की स्वत सत्तास्फूर्ति सम्भव न होनेसे ज्ञानसे ज्ञेयका भेद सिद्ध नहीं होता। यद्यपि द्रष्टृचेतन और दृश्यका भेद प्रसिद्ध है (इसी हेतुसेही व्यवहार होता है) तथापि उस भेदका मूल दृष्ट नहीं है। दो अदृष्टोंका परस्पर भेद किंवा एक दृष्ट और अपरअदृष्ट इनका भेद दृष्ट नही हो सकता। क्योंकि भेद दृष्टिके लिये धर्मि (जिन

आश्रयमे भेद या अभाव रहता है) और प्रतियोगी (जिसका भेद या अभाव है) इसके ज्ञान आवश्यक है। जो अदृष्ट है वह कभीभी धर्मी या प्रतियोगी नहीं हो सकता। यदि अदृष्ट पदार्थ धर्मी होगा तो सब पदार्थोंके भेदप्रतीति हो जायगी और यदि अदृष्ट पदार्थ प्रतीयोगी हो तो सर्वतः भेदप्रतीति हो जायगा। ऐसा होनेसे संशय विपर्ययकाभी अनुदय होगा। अर्थात् यह वस्तु इस वस्तुकी अपेक्षा भिन्न है या नहीं इत्याकार संशय किंवा भेदाभाव—निश्चयभी नहीं होगा। अत दो दृष्ट पदार्थोंकी परस्पर अपेक्षासे भेददृष्टि संभव है, दृष्ट और अदृष्ट इन दोनोंकी या दो अदृष्ट पदार्थोंकी भेददृष्टि संभव नहीं है। प्रकृतस्थलमे दृक् अदृष्ट है और दृश्य दृष्ट है। इसलिये दृक्‌दृश्यके भेदप्रसिद्धिका कोई मूल पाया नहीं जाता। इसी हेतुसे दृक् और दृश्यमे भेददृष्टिका संभव नहीं है क्योंकि दृशि (स्वप्रकाश साक्षिचेतन) अदृश्य (अविषय) है (१)

दृक् और दृश्यका अन्योन्याभाव अवगत होना शक्य नहीं है अभाव प्रतियोगिसापेक्ष होता (किसका अभाव किसमे है ऐसा ज्ञान होनेसे अभावका ज्ञान होता है) और अभाव दृश्य होनेसे उसको द्रष्टाकी आवश्यकता है) प्रकृतस्थलमे दृक् स्वय दृशिस्वरूप है। इस प्रकार स्वय दृष्टिके (साक्षिचेतनको) प्रतियोगिसापेक्षता और दृश्यता नहीं है, होगी तो उसके स्वयदृष्टत्वकी हानी होगी। जो स्वसत्तामे प्रकाशव्यभिचारी है उसकी अदृशिता निश्चय की जा सकती है परंतु दृशि सदादृष्ट (स्वप्रकाश) होनेसे

---

(१) अविषयत्वात् दृशो न भेदाभावधर्मिता नापि प्रतियोगिता।
(आनन्दानुभवकृत इष्टसिद्धिविवरण—उमाद्रित)

उसका स्वसत्तामे प्रकाश–व्यभिचार नही है। स्वयंदृष्टिको कभीभी अदृष्टि सम्भव नही है क्योंकी उसकी स्वरूपभूत दृष्टि अन्यानपेक्ष है। वह यदि अन्यापेक्ष होगा तो (अन्यापेक्षत्व होनेसे)अनित्यत्व हो जावेगा।

उक्त रीतिसे दृक्स्वभावके पर्यालोचनद्वारा भेद और अभावके सम्बन्ध उसमे निरास करके अब भेद और अभाव इन दोनोके स्वरूपके पर्यालोचन द्वारा उनकेभी दृक्–धर्मत्व निराकृत करते है। यहापर दो बिकल्प उत्थापित कीये जाते है, भेद और अभाव वे दृश्य है या अदृश्य है? यदि दृश्य हो तो दृश्यान्तरकी समान वे दृक्धर्म नहीं होंगे। वे यदि अदृश्य हों तो उनको अप्रकाश या स्वप्रकाश कहना होगा। अप्रकाश होनेसे उनकी सिद्धि नहीं होगी। यदि वे स्वयंप्रकाश हों तो दृशिसे उनका भेदही नही रहेगा (२) इस पक्षमे और भी दोष है:— स्वयंप्रकाश होनेसे वे सदाभान होगा। सदाभान होनेसे उनकी सिद्धि प्रतियोगि–अनपेक्ष होगी। प्रतियोगि–अनपेक्ष–सिद्धि होनेमे भेदकी और अभावकी हानी होगा। भेद और अभाव ये दोनो नियमसे प्रतियोगि–सापेक्ष है। अतः इससे सिद्ध होता है कि वे (भेद और अभाव) दृशिके धर्म नही है। दृशिका स्वरूपभी वे नही है। स्वयंप्रकाश पदार्थ

---

(२) स्वयमानत्वे तयोर्दृश्येन सहैरज्ञानागम्यत्वात्र दृश्यधर्मत्वे यथा दृशः स्वयमानायाःनदृश्यधर्मत्व तद्वत्। तयोः स्वयमानत्वादेव दृग्वत् दृक्प्रति योगितया तयोर्भेदो न सिध्येत् प्रत्यक्षाप्रत्यक्षभेदस्याप्रत्यक्षत्वात् तयोः परस्परमपि भेदो न सिद्धयेत् स्वयमानत्वाविशेषात् (ज्ञानोत्तमकृत इष्टसिद्धिविवरण अमुद्रित)

आश्रयमे भेद या अभाव रहता है) ओर प्रतियोगी (जिसका भेद या अभाव है) इसके ज्ञान आवश्यक है। जो अदृष्ट है वह कभीभी धर्मी या प्रतियोगी नहीं हो सकता। यदि अदृष्ट पदार्थ धर्मी होगा तो सब पदार्थोंके भेदप्रतीति हो जायगी और यदि अदृष्ट पदार्थ प्रतीयोगी हो तो सर्वत्र भेदप्रतीति हो जायगा। ऐसा होनेसे संशय विपर्ययक भी अनुदय होगा। अर्थात यह वस्तु इस वस्तुकी अपेक्षा भिन्न है या नहीं इत्याकार संशय किंवा भेदाभाव–निश्चयभी नहीं होगा। अत दो दृष्ट पदार्थोंकी परस्पर अपेक्षासे भेददृष्टि संभव है, दृष्ट और अदृष्ट इन दोनोकी या दो अदृष्ट पदार्थोंका भेददृष्टि संभव नहीं है। प्रकृतस्थलमे दृक् अदृष्ट है और दृश्य दृष्ट है। इसलिये दृक्दृश्यके भेदप्रसिद्धिका कोई मूल पाया नही जाता। इसी हेतुसे दृक और दृश्यमे भेददृष्टिका संभव नहीं है क्योंकि दृशि (स्वप्रकाश साक्षिचेतन) अदृश्य (अविषय) है (१)

दृक और दृश्यका अन्योन्याभाव अवगत होना शक्य नहीं है अभाव प्रतियोगिसापेक्ष होता (किसका अभाव किसमे है ऐसा ज्ञान होनेसे अभावका ज्ञान होता है) और अभाव दृश्य होनेसे उसको द्रष्टाकी आवश्यकता है। प्रकृतस्थलमे दृक् स्वयं दर्शिस्वरूप है। इस प्रकार स्वयं दृष्टिके (साक्षिचेतनको) प्रतियोगिसापेक्षता ओर दृश्यता नहीं है, होगा तो उसके स्वयंदृष्टत्वकी हानी होगी। जो स्वसत्तामे प्रकाशव्यभिचारी है उसकी अदर्शिता निश्चय की जा सकती है परंतु दृशि सदादृष्ट (स्वप्रकाश) होनेसे

---

(१) अविषयत्वात् दृशो न भेदाभावधर्मिता नापि प्रतियोगिता।
(आनंदानुभवकृत दृक्सिद्धिविवरण–अमुद्रित)

उसका स्वसत्तामे प्रकाश–व्यभिचार नही है। स्वयंदृष्टिको कभीभी अदृष्टि सम्भव नही है क्योंकी उसकी स्वरूपभूत दृष्टि अन्यानपेक्ष है। वह यदि अन्यापेक्ष होगा तो (अन्यापेक्षत्व होनेसे) अनित्यत्व हो जावेगा।

उक्त रीतिसे दृक्‌स्वभावके पर्यालोचनद्वारा भेद और अभावके सम्बन्ध उसमे निरास करके अब भेद और अभाव इन दोनोके स्वरूपके पर्यालोचन द्वारा उनकेभी दृक्–धर्मत्व निराकृत करते है। यहांपर दो बिकल्प उत्थापित कीये जाते है, भेद ओर अभाव वे दृश्य है या अदृश्य है? यदि दृश्य हो तो दृश्यान्तरकी समान वे दृक्‌धर्म नही होंगे। वे यदि अदृश्य हों तो उनको अप्रकाश या स्वप्रकाश कहना होगा। अप्रकाश होनेसे उनकी सिद्धि नही होगी। यदि वे स्वयंप्रकाश हों तो दृशिसे उनका भेदही नही रहेगा (२) इस पक्षमे और भी दोष हैः–– स्वयंप्रकाश होनेसे वे सदाभान होगा। सदाभान होनेसे उनकी सिद्धि प्रतियोगि–अनपेक्ष होगी। प्रतियोगि–अनपेक्ष–सिद्धि होनेसे भेदकी और अभावकी हानी होगा। भेद और अभाव ये दोनो नियमसे प्रतियोगि–सापेक्ष है। अतः इससे सिद्ध होता है कि वे (भेद और अभाव) दृशिके धर्म नही है। दृशिका स्वरूपभी वे नही है। स्वयंप्रकाश पदार्थ

---

(२) स्वयमानत्वे तयोर्दृश्यन सहैकज्ञानागम्यत्वान्न दृश्यधर्मत्व यथा दृशः स्वयमानायाःनदृश्यधर्मत्व तद्वत्। तयोः स्वयमानत्वादेव दृग्वत् दृक्प्रतियोगितया तयोर्भेदो न सिध्येत् प्रत्यक्षाप्रत्यक्षभेदस्याप्रत्यक्षत्वात् तयोः परस्परमपि भेदो न सिद्ध्येत् स्वयमानत्वाविशेषात् (ज्ञानोत्तमकृत इष्टसिद्धिविवरण अमुद्रित)

प्रतीयोगिकी अपेक्षा न करतेही सिद्ध होता है। अत उसका भेदपणा और अभावपणा नही हो सक्ता। सुतराम् उसरूपसे (स्वप्रकाशरूपसे) भेद या अभाव सिद्ध नही हो सकते। यदि एकहा दशिके भेद और अभाव ये दो रूप हो तो कहना होगा की दक् उन दोनोसे अभिन्न अथवा वे दो दशिसे अभिन्न ह। प्रथम पक्षमे दशिका एकत्व नही रहेगा क्योंकि वह दोनोसे अभिन्न है। अतिम पक्षमे उन दोनोका परस्पर भेद नही रहेगा क्योंकि वे एकही जो दशि उससे अभिन्न है। तथा दृक् – अभिन्न होनेसे उन दोनोको स्वप्रभत्व कहना होगा। अतः पूर्वोक्तदोष पुन उपस्थित हुवा अर्थात् प्रतियोगि –अनपेक्ष उनकी सिद्धि होनसे भेदपणा और अभावपणा की हानी हो गयी। अत भेद और अभाव वे दोनो दशिरूप है वह पक्षभी सिद्ध नही होता। उल्लिखित विचारद्वारा यह सिद्धान्त प्राप्त हुआ की दृक् – प्रतियोगिक (दृक् जिसका प्रतियोगी एतादृश) भद और अभाव दृश्यम नही रह सक्ते।

द्रष्टा और दृश्यका परस्पर भेद और अभावविषयक कोई प्रमाण भी नहीं है। चक्षु या मन द्वारा वे अवगत नही हो सकते क्योकि दशिस्वरूप चक्षु आर मन इन दानोको अगोचर है। यदि द्रष्टा प्रमाणसे ज्ञेय होता तो उसका भी अपर द्रष्टा होना चाहिये, द्वितीयका तृतीय तृतीयका चतुर्थ इसप्रकार अनवस्था होगी। अत द्रष्टा अगोचर सिद्ध हुआ। अगोचरसे भेद या अगोचरका अभाव गोचरमे ज्ञात होना शक्य नहीं। यदि द्रष्टा गोचर होगा तो घटादिके समान अदृक् होगा। जोभी घटज्ञान पटज्ञान इत्यादि

विशिष्टज्ञान कदाचित् विषय हो तोभी केवलज्ञान कभीभी विषय नहीं होता । दृक्-प्रतियोगिक भेद और अभाव इन दोनो-विषयोमें दृक् ही प्रमाण होगा ऐसाभी नही कह सकते। दृक्के ग्रहणविना तत्प्रतियोगिक भेद और अभावके ग्रहण नहीं हो सकते । परंतु दृक्का ग्रहण संभवही नहीं हो सकता क्योंकि आपनही आपनेको गोचर करै यद कर्मकर्तृविरोध है । दृक् स्वत स्फुरित होनेसे स्वप्रतियोगिक भेद और अभाव इन दोनोका प्रमाण स्वत ही होना असभव है। प्रतियोगी तथा प्रतियोगियुक्त भेदज्ञान और अभावज्ञान आपने आपही होता है ऐसा कहनेसे यह प्रष्टव्य है कि युगपत् संपूर्ण रूपसे अथवा अंशरूपसे ? आद्यपक्ष संगत नहीं क्योंकि द्रष्टा सावधिरूपसे और उस अवधिके प्रमाणरूपसे युगपत् संपूर्ण वर्तमान होनेको समर्थ नही है । प्रतियोगिरूपसे रह-नेवाला तद्रूपमेंहि ममास हो जानेसे उसका प्रमाण पुनः नहीं होगा। द्वितीय पक्षभी असंगत है क्योंकि स्वप्रकाशज्ञान सांश या सावयव नहीं है । स्वप्रकाश ज्ञानको सावयव (अवयव सहित) कहे तो उसके अवयव और अवयवी ये दोनो स्वप्रकाश होंगे अथवा उन-मेसे कोई एक स्वप्रकाश होगा । यह दोनो पक्ष असमंजस है । उभय स्वप्रकाश होनेसे वे परस्पर अविषय होंगे । जो स्वतः प्रकाश नही किन्तु अपरद्वारा प्रकाशित है वोही विषय कहलाता है । अतः स्वप्रकाश अवयव और स्वप्रकाश अवयवी परस्परके विषय न होनेसे अवयव अवयवीको नहीं जानेंगे, और अवयवीको अवयव प्रतीत नहीं होंगे । इस प्रकार अवयव और अवयवी प्रतीत न होनेसे उसको सावयव नही कह सकते । यदि कहा जावेकि अवयव और अवयवी उभय स्वप्रकाश नही किन्तु एक स्वप्रकाश है और अपर

अस्वप्रकाश है तो उन दोनोंका अशांशीभाव (अवयव अवयविभाव) नहीं होगा। अस्वप्रकाशरूप घट प्रकाशरूप ज्ञानका अवयव नहीं होता। अत स्वप्रकाशज्ञान अवयवसहित नहीं है। स्वप्रकाशज्ञान अविषय होनेसे वह निरवयव, निरंश, और निराकार है। जो पदार्थ सावयव और साकार होता है वही ज्ञानका विषय होता है। अधिक देशके ज्ञानविना पदार्थोंका सावयवत्व निर्द्धारित नहीं होता। सीमाके निर्देशविना पदार्थका सावयव व ज्ञात नहीं होता। सीमाके निर्देश करनेके लिये उसका अधिक देश विपर्याक्रित होना आवश्यक है। अत जो अविषय है वह सावयव नहीं हो सकता क्योंकि उसका अधिक देश विपर्याक्रित नहीं होता। स्फुरणरूप होनेसे ज्ञान अननुभाव्य है। अतः ज्ञान सावयव नहीं किन्तु निरवयव है। ज्ञान-स्वरूपके अधिक देशक ज्ञानविना उसका सावयवत्व सिद्ध नहीं होगा। अतः ज्ञानस्वरूपकी सावयवत्व सिद्धिके पहिले ज्ञान विद्यमान है। इसलिये ज्ञेय पदार्थके अधिक देशका प्रकाश ज्ञानद्वारा होते हुयेभी ज्ञानस्वरूपका अधिक देश उपपन्न नहीं है। सुतराम् ज्ञेय पदार्थके समान ज्ञानकी सीमा सम्भव नहीं है। अत वह सावयव नहीं
(३) यदि ज्ञान सीमाबद्ध हो तो वह अपर पदार्थद्वारा सीमायुक्त

(3) It is only possible to be aware of a limit to anything by knowing what is beyond the limit No one could be aware of the end of a straight line unless he were aware of the empty space beyond the end Hence if knowledge itself has any absolute limit we could not be aware of the fact for we could only know the limit by being aware of what is beyond the limit and that would mean that knowled

होनेसे उस सीमाका ज्ञान नहीं हो सकता। सीमाको जाननेके लियेही सीमारहित सम्बद्ध अथच तदतीत का ज्ञान होना अवश्यक है। ज्ञान तदतीत हुयेविना ज्ञानकी सीमा कैसी अवगत होगी? अतः ज्ञानकी सीमा जाननके पहिलेही ज्ञान तदतीत है, अत. ज्ञान सिद्ध है, इसलिये ज्ञानकी सीमा प्रसिद्ध नही हो सकती। परिच्छिन्नत्व प्रकाशित होताहै इसीसेही प्रतिपन्न होता है कि परिछिन्नत्व प्रकाशगत नहीं है(४) यदि दृशि सांश होगा तो उसकी अनित्यत्वप्राप्ति और अदृक्त्व प्रसग होगा। साशत्व अनित्यत्व और अदृक्त्व ये नियत सहचररुपसे प्रसिद्ध है अत सिद्ध हुआ कि दृशिस्वरुप एकांशमे भेदका या अभावका प्रतियोगी है और अपरांशसे उन दोनोंको जानता है ऐसा नहीं हो सकता। भेद और अभावका दृक्प्रमाणत्व (दृक् द्वारा ज्ञातत्व) संभव नहीं है। भेद और अभाव यदि दृक्रुप प्रमाणद्वारा अवगत है तो वे दृक्प्रतियोगिक नहीं होंगे किन्तु अप्रतियोगिक या अन्यप्रतियोगिक होंगे। जो जिसमे प्रमाण होता है वह तत्प्रतियोगिक नहीं होता, किन्तु अन्यप्रतियोगिक होता है। इस रीतिसे यदि भेदविषयमे दृक्रूप प्रमाण हो तो वह दृक्प्रतियोगिक नहीं हो सकता।

---

ge has already passed beyond its supposed limit or in other words, the limit is no limit.

(Stace's "The Philosophy of Hegel,,)

(4) It is flagrant self contradiction that the finite should know its own finitude.

(Bradley's " Ethical Studies ").

दृशिका अभाव दृश्यमे है यह अवगत होनाभी शक्य नहीं।उपलब्धि योग्य पदार्थोके अनुलब्धिसे उनका अभावज्ञान होता है। परतु दृशिका अभावज्ञान सम्भव नही है क्योंकि वह उपलब्धिस्वरूप है। दृशिसे अन्य उपलब्धि नहीं है जिसके अभावसे (अनुलब्धिसे) अभाव ज्ञात होगा। अतः दृशिका अभावज्ञान कहींपरभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसका (अभावज्ञानका) हेतु नहीं है, अर्थात् दृशिके अनुलब्धिका अभाव होनेसे दृक्प्रतियोगिक अभावज्ञान समव नही है। यहापर अभावज्ञानके कारणरूप प्रतियोगि-स्मृति आदि(५)नहीं है, क्योंकि दृशि अग्राह्य है। प्रमाणद्वारा दृक्-प्रतियोगिक अभावका ज्ञान नहीं हो सकता क्योकि दृशि अमेय (प्रमाणका अविषय) है। "यह घट पट नहीं" इस प्रकार प्रतियोगिका ग्रहण इस अभावज्ञानका हेतु है। यदि धर्मी और प्रतियोगीद्वारा अविशेषित अभावज्ञान होता तो अविशेषित होनेसे सर्वत्रही सर्वका अभावज्ञान होगा किंवा किसीकाभी कहीं-परभी अभावज्ञान नहीं होगा। दृशिस्वरूप अमेय होनेसे वह प्रतियोगी नही है। प्रतियोगी आदि न रहनेसे दृक्-प्रतियोगिक

---

(५) भूतलमे घटाभावके ज्ञानस्थलमे घटका (अभाव प्रतियोगिका) स्मरण अपेक्षित है। जिस आश्रयमे अभाव रहता है उसको ग्रहण करके और जिसका अभावज्ञान है उसका स्मरण करके वह अभावज्ञान मानस-(मतान्तरमे प्रत्यक्ष) होता है। 'गृहीत्वा वस्तुसद्भाव स्मृत्वाच प्रतियोगिन, मानस नास्तिताज्ञान जायते अक्षऽनपेक्षनात्।

(मीमासावार्तिक)

अभाव ज्ञेय नहीं होगा। प्रमेय पदार्थही प्रतियोगिरूपसे अभावरूप प्रमाणमें स्फुरित होता है। जो अनुभव नित्य है उसका नाश संभव न होनेसे और वह सदा प्रकाशरूप होनेसे उसकी स्मृति नहीं हो सकती। अतएव प्रमाणका (अभावप्रमाणका) प्रतियोगिरूपसे वह स्मृतिगोचर नहीं हो सकता। संदिग्ध भावकीही बुभुत्सा होनेसे उसके अभावज्ञानका उदय होता है। परंतु दृशि अप्रमेय (स्वयंप्रभ) और असंदिग्धभावरूप होनेसे वह अभावप्रमाणमें स्फुरित और अभावज्ञानमें उदित होना संभव नहीं है। अत दृक्-अभाव अप्रामाणिक है। प्रामाणिक अभाव नहीं होता तथापि अप्रमेय अभाव होगा ऐसा कोई कहे तो यह कहनाभी उचित नहीं है। यदि अप्रमेय अस्वयंप्रभ हो तो उसकी सिद्धिही नहीं होगा। पदार्थोंकी सिद्धि त्रिविधरूपसे होती है, प्रमाणद्वारा अथवा दृशिरूप अनुभवद्वारा अथवा स्वतः सिद्धि। यदि दृशिका अभाव स्वतःसिद्ध माना जावे तो उसके प्रतियोगी आदि न रहनेसे दृशिकाही अभाव नहीं है। दृक्का अभावज्ञान दृक्ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि सप्रतियोगिक अभावका स्वप्रकाशज्ञानत्व संभव नहीं है। संभव होनेसे अभावत्वकी व्याहति होगी। अत. यह अप्रमेय अभाव स्वतः सिद्ध न होनेसे अवशेष (प्रकारान्तरके अभावसे) उसको दृशिसिद्धत्व कहना होगा। परंतु यहभी सम्भव नहीं है क्योंकि स्वअभावका साधक स्व नहीं हो सकता। अतः उक्त अभाव अस्वयंप्रभ अथच प्रमाणागोचर होनेसे उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। सुतरा दृश्यमें दृक्-अभाव है, इस विषयमें प्रमाण नहीं है। दृक्दृश्यका इतरेतराभाव न हो तथापि उनका भेद होगा ऐसा

वचनभी सगत नही । इतरेतराभावविना भेदका सभव नहीं परतु इतरेतराभाव दृक् दृश्यमे नहीं है। अत प्रामाणिक भेद और अभाव इन दोनोका अभाव होनेसे दृशिका अनन्तपना सिद्ध हुआ अर्थात् दृशिका भेद और अभाव न होनेसे उसका देशत कालत: और वस्तुत अन्तरहितत्व प्रतिपन्न हुआ। उक्त विचारद्वारा यह सिद्धात प्राप्त हुआ कि दृशिरूपचेतन अनन्त होनेसे जडपदार्थ उससे भिन्नरूपसे निर्वचनयोग्य नहीं है।

(३) जडप्रपंच चेतनाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नहीं है:—चेतनाभिन्नरूपसेभी जडका निर्वचन सम्भव नहीं है। चेतन परानपेक्षसिद्ध, जड परत सिद्ध, अत: इनमे अभेद सम्भव नही है। जड चेतनाभिन्न होनेसे जडमे चेतनका अन्तर्भाव होगा अथवा चेतनमे जडका अन्तर्भाव होगा, इससे अतिरिक्त कोई प्रकार नहीं है। अर्थात दृक् दृश्यका अभेद होनेसे दृश्यका दृक्मात्रत्व होगा किंवा दृशिका दृश्यमात्रत्व होगा। परतु यह सम्भव नहीं है। यदि दृश्य, दृशि अभिन्न है तो दृक् है वह दृश्य कैसे होगा? यदि दृक दृश्य अभिन्न होगा तो वह दृश्यही होगा, दृक नहीं। इसरीतिसे दृश्य अदृश्य होगा। अत दृक् दृश्यका अभेद असभव है,

शका—'शुक्लघट' इसस्थलमे शुक्ल और घटका जैसा विशेष्य विशेषणभाव होता है ऐसे ही 'घटदृक्' स्थलमे विशेष्यविशेषण भाव होनेसे इस स्थलमेभी अवश्य धर्म धर्मित्व कहना होगा। यह धर्म धर्मिभाव अत्यन्त भेदस्थलमे नहीं हो सकता। अत, दृक् दृश्यका अभेद मानना होगा।

उत्तर—दृक् और दृश्यका धर्मधर्मिज्ञान नहीं हो सकता है। घट और रूप जैसा एकज्ञानके गम्य है वैसेही दृक् और दृश्य एकज्ञान गम्य नहीं है। जिनको एकज्ञानगम्यता होती है उनका धर्मधर्मिभाव दृष्ट होता है। यदि एकज्ञानागम्य होनेसे भी धर्मधर्मिभाव माना जावे तो अतिप्रसंग दोष होगा, हिमवत् और विन्ध्यकाभी धर्म-धर्मिभाव होने लगेगा क्योंकि एकज्ञानागम्यत्व सम है। एक जो दृशि उसका दृश्यधर्मत्वरूपसे दृश्यत्व और दृश्यका दृक्त्व यह एकही कालमे संपूर्ण रूपसे नहीं हो सकता। दृक् और दृश्यका यदि धर्मधर्मिभाव हो तो एकज्ञानगम्यत्वभी अवश्यही होगा। अतः एक जो दृशि वह संपूर्ण रूपसे दृश्यत्व (दृश्यके धर्मरूपसे अथवा दृश्यके धर्मिरूपसे) तथा अपर दृक् न रहनेसे तदानीं ही उसका (धर्मधर्मिभावका वा दृश्यका) दृक्त्व हो जावेगा। परंतु यह अयुक्त है क्योंकि युगपत् संपूर्णरूपसे दृश्यत्व और दृक्त्व परस्पर विरुद्ध है। यदि कहो कि, एक अंशसेही दृशिका दृश्यधर्मता अथवा दृश्यधर्मिता होनेसे दृश्यत्व है और अंशान्तरसे दृक्त्व है, तो यह समीचीन नहीं; क्योंकि दृशि अनंश है तथा उस दृशिका जो दृश्यांश वह अदृक् हो जावेगा। दृक्का दृश्यरूपसे (दृश्यका धर्मरूप अथवा दृश्यका धर्मिरूपसे) प्रविष्ट भाग दृश्य होनेसेही अदृक् होगा। अदृक् होनेसे दृक्-दृश्यके धर्मधर्मित्व न होंगे किन्तु दृश्य-दृश्यकेही धर्मधर्मित्व होंगे। एक दृशिका दृक्त्व और दृश्यत्व ये दो युगपत् या क्रमिक य अंशद्वारा नहीं हो सकते। औरभी यह विचारणीय है कि दृश्य

और दर्शिका जो धर्मधर्मिभाव वह स्वप्रकाश है या दृश्य है ? यदि स्वप्रकाश होगा तो दृक्-अभिन्न होगा, वह धर्मधर्मिभाववही नही होगा । और दृक्-दृश्यमें जो धर्म धर्मिभाव है वे दृक् और दृश्य इन दोनोके धर्म हैं ऐसा कहना होगा । परतु यह सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि धर्मधर्मिभाव स्वयप्रकाश होनेसे उसका (वास्तव) सबध दृश्यके साथ नहीं होगा । यदि धर्म धर्मिभाव दृश्य होगा तो दर्शिके साथ उसका सबध नहीं होगा । अर्थात् वह दृक्का धर्म नही होगा, क्योंकि दृश्यका स्वय प्रकाश दृक्के साथ सबध नहीं होगा । ज्ञेय पदार्थ यदि तत्वत चिद्धर्म होगा तो चेतनकाभी वेद्यत्व आ जायगा । यदि दृक्के साथ दृश्यका धर्म धर्मिभाव मिथ्या संबधसे है तो यह सबंधप्रयुक्त धर्मधर्मिभावभी मिथ्या होगा । अत द्रष्टा दृश्यके धर्मधर्मिभाव सगत नहीं है । सुतरा दृक् दृश्यका, जड- चेतनका अभेद नहीं । दृक दृश्यका अभेद होनेसे सर्व व्यवहारका लोप हो जायगा । अत प्रतिपन्न हुआ कि जडप्रपच चेतनाभिन्नरूपमें निर्वचनीय नहीं है (६)

---

(६) विरुद्ध धर्माध्यास और कारणभेदही भेद और भेदहेतु होता है । अतएव दृक् और दृश्यका व्यावहारिक भेदही होता, अभेद पुन व्यावहारिकभी सभव नहीं है ।

(४) जड प्रपंच चेतनसे भिन्नाभिन्न रूपसे निर्वचनीय नही है —

चेतनसे भिन्नाभिन्न इन उमयरूपसेभी जडपदार्थ निर्वचनीय नही है। एकका एकत्र एकरूपसे भेद और उसका अभाव (अभेद) विरुद्ध है। जो एक वह नाना ऐसी प्रमा नही होता। जो अनेक वह एक ऐसी प्रतीतिभी नही होती। एकही प्रमाणका युगपत् विधि और निषेधरूप व्यापारद्वय समव नही। विधि और निषेध इन दोनोको एककालमे प्रमाकरना प्रमाणका स्वभाव नहीं होता। भेदज्ञानका विषय अभेद नही और अभेदज्ञानका विषय भेद नही। अभेदज्ञानका विषय भेदज्ञानके विषयसे अन्य होनेसे दो भिन्न पदार्थोंका अभेद सिद्ध नही होता। अत एकत्र भेदा भेद सभव नही है। दृश्य कभीभी द्रष्टारूप नही है, और दृशिभी दृश्यरूप नही है। तृतीयरूप नहा हो सकता। दृशिके रूपद्वय नही हो सकते। दृश्यकाभी ऐसा है। सुतरा दृशिके या दृश्यके रूपद्वयका अभाव होनेसे उन दोनोका परस्पर भेदाभेद नही हो सकता। अत चेतनसे भिन्नाभिन्न उमयरूपसे जडका निर्वचन नही होता।

चेतन और जडका भेदाभेद माननेसे कहा जा सकता है कि एकाशमे भेद और अपर अशमे अमेद है, परतु यह हो नही सकता, क्योंकि चेतन अनंश है। अतएव एकाशमे भेद न होनेसे संपूर्णरूपसे अभेद और संपूर्णरूपसे भेद कहना होगा। परतु यह सगत नही है। जो चेतनसे सपूर्णरूपस अभिन्न है वह यदि चेतनसे भिन्न होगा तो चेतनभी चेतनसे संपूर्णरूपसे

अभिन्न होनेसे वहभी अपनेसे भिन्न होगा, परंतु यह समीचीन नही है। अपनेही अपनेसे भिन्न नही होता क्योंकि एकही निरंशकी अवधिस्वरूपता और अवधिमत्स्वरूपता नही हो सक्ती (भेदमे प्रतियोगी अवधि होता है और अनुयोगी अवधिमान् होता है)। औरभी जिसरूपसे अभेद उसरूपमे यदि भेद होगा तो भेदबुद्धि और अभेदबुद्धि एकविषयक होगी। अर्थात् उसका भेदस्वरूपता नही होगी। तात्पर्य यह है कि भेदबुद्धिका और अभेदबुद्धिका विषय पृथक पृथक होना आवश्यक है। प्रकृत स्थलमे ऐसा न होनेसे (अर्थात् भेदको योग्यता न रहनेसे) जो अभेद वही भेद और जो भेद वही अभेद ऐसा होगा। अतएव अभेदसे अतिरिक्त भेद सिद्ध नही होगा। अथच ऐसा होता है। अतएव चेतनके और जडका भेदाभेद नही है। जो चेतनव्यतिरिक्त है उसका पुन परमार्थेन तद्भाव संभव नही है। सुतरां चेतनसे भिन्नभिन्न उभयरूपसे जडका निर्वचन नही हो सकता।

जडप्रपंच चेतनसे भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नही होनेसे वह अनिर्वचनीय है। अद्वैतवेदान्तशास्त्रमे अनिर्वचनीयका अर्थ वचनका अयोग्य (अवाच्य) ऐसा नही है किन्तु दुर्निरूप्य है। उस वचनद्वारा वक्ताका असामर्थ्य प्रकट किया जाता है ऐसाभी नही है, किन्तु उसकेद्वारा ज्ञेयप्रपंचका स्वरूप वर्णित होता है (७) युक्ति

---

(७) नहि प्रमातॄणामसामर्थ्यादनिर्वचनमपितु विषयस्वाभाव्यात
(अद्वैतसिद्धिगुरुचन्द्रिका—अमुद्रित)

द्वारा निश्चय करके भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्नत्व प्रकारसे निरूपण-असहिष्णु होनेसे वह अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीयतामेंभी अनिर्वचनीयताही वेदान्तियोंको सम्मत है।

(५) प्रकारान्तरसे ज्ञेयपदार्थका अनिर्वचनीयत्व प्रदर्शन—ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिसे विचार करके ज्ञेयका अनिर्वचनीयत्व सिद्ध हुआ। अब सत्स्वरूपकी दिशासे विचार किया जाता है। सत्स्वरूपका विचारद्वारा निरूपित हुआ कि सन्घटः सन्पटः इत्यादि सर्वत्र अनुगत सद्बुद्धि कोई अननुगत पदार्थ जनित नहीं है। अनुगत कोई धर्मद्वारा भी उक्त सत्तादात्म्य सूपपन्न नहीं है। 'मृद्घट' इत्यादि स्थलके समान उक्त प्रतीति अनुगत धर्मिमूलक है। अतएव सर्व प्रपंचके धर्मिरूपसे सत्स्वरूप प्रतिपन्न होता है। सत्स्वरूप-धर्मीका धर्मरूपसेप्रतिभात पप्रंच सत् नहीं है क्योंकि वह धर्म प्रकाश्यरूपसे प्रतीत होताहै। वह सत् नहीं है क्योंकि एकमात्र प्रकाशही सत् है। जो सिद्ध है अथच अपरद्वारा प्रकाशित नहीं वह स्वत·सिद्ध है। जिसका अस्तित्व स्वतःही सिद्ध है वही सत् है। ज्ञेय प्रपंचका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है क्योंकि वह ज्ञानकी अपेक्षा करता है। ज्ञानका सापेक्ष न होनेसे उसका ज्ञेयत्वही प्रसिद्ध नहीं होता है। जिसका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है उसको सत् कहना सगत नहीहै क्योंकि सत् स्वतःप्रकाश (स्वतंत्ररूप) है। अतएव जडप्रपंच सत्‌रूप नहीं है। वह असत्भी नहीं है। इंद्रियका सन्निकर्ष या ज्ञानका तादात्म्य असत्के साथ न हो सकनेसे जडप्रपच असत् नहींहै। यद्यपि संपूर्ण जडप्रपंच किसीकेभी ज्ञानका विषयभूत नहीं है,

तथापि कल्पनाबलसे स्वप्रकाशज्ञानमे अवस्थित होकर उसके साथ तादात्म्यप्राप्त ज्ञेयके प्रति निरीक्षणपूर्वक सर्व जटपदार्थ-विषयमे उक्तरूपसे कहा जाता है। ऐसे तादात्म्यविना पदार्थोंकी सिद्धि संभव नहीं क्योंकि वे स्वत सिद्ध नहीं है। ज्ञेय विश्वप्रपंच सदसत् उभय रूपसेभी निर्वचनीय नहीं है। युगपत् परस्पर विरूद्ध सत्वासत्व एक वस्तुमे अवस्थित नहीं हो सकता। एक समयमे एक पदार्थमे अस्तित्व और नास्तित्व रह नहीं सकता, इसलिये अस्तित्व और नास्तित्व परस्पर विरुद्ध धर्म है। विरूद्धका एकत्र समावेश कर्तृ भेदसे, देशभेदसे, अवस्थाभेदसे, कालभेदसे, प्रति योगिभेदसे (यथा त्र्यणुक द्व्यणुक अपेक्षा महत् है, चतुरणुक अपेक्षा अल्प है) हो सके परंतु उपाधिरहितरूपसे स्वभावत हि विरूद्धका एकत्र समावेश संभव नहीं है। अन्यतरके उपमर्दनसे अन्यतरका बुद्धिमे आरोहित होनेसे युगपत् एक वस्तुका सत्वासत्वका समुच्चय अवगत नही हो सकता। अतएव प्रमाणाभावसे युगपत् परस्पर विरुद्ध सत्वासत्व एक वस्तुमे अवस्थित नहीं हो सकते। सुतरां प्रतिपन्न हुआ कि चेतन और जड इन द्विविध पदार्थोंमे चेतन स्वत सिद्ध सत् है, जड पदार्थ अनिर्वचनीय है। सत् या असत्‌रूपसे विचारासह होकर सत्वासत्व उभयरूपसेभी विचारासह होनेसे जडप्रपंच अनिर्वचनीय है। सर्वथा वचनके अगोचरको अनिर्वचनीय नहीं कहते किन्तु पारमार्थिक सत्स्वरूप चेतनसे विलक्षण तथा सर्वथा सत्तास्फूर्तिशून्य शशशृंगादि असतसे विलक्षण अनिर्वचनीय शब्दका पारिभाषिक

अर्थ है(८) सदसत् विलक्षणत्वही दुर्निरूपत्व या अनिर्वचनीयत्व है, पदार्थका स्वरूपासत्व नहीं। ऐसा होनेसे स्वाभिप्रेत पदार्थका स्वरूप निरूपणभी वृथा होता है।

(६) **अद्वैतसिद्धांत**—उल्लिखित विचारद्वारा अशेष निर्वचनीय पक्षके खंडनपुरस्सर ज्ञेयप्रपंचका अनिर्वचनीयत्व प्रतिष्ठित हुआ। अतएव जगत्‌विषयमे अद्वैतवैदान्तिक सिद्धान्त प्राप्त हुआकि जगत ज्ञानज्ञेयरूप है, उनमे ज्ञान स्वप्रकाशस्वरूप है और ज्ञेयप्रपंच अनिर्वचनीय है।

(८) अथवा सदन्यत्वमनिर्वचनीयत्वम्। न चाऽसत्यतिव्याप्तिः। अन्यथ्यादि धर्मयोग्याऽसद्रूपाङ्गाकारे तस्य प्रपचाऽन्तःपातित्वाद् बाह्याऽभ्युपेताऽसतो निस्वरूपत्वात्। किंचाऽसन्नाम किंचिदास्ति चेदसत्वव्याघातः नास्ति चेत्कुत्राऽतिव्याप्तिः

(वेदान्ततत्वविवेक)

चतुर्थ अध्याय
भ्रान्तिविचार

(क) **भ्रान्तिविषयक मतभेद**—प्राच्य दर्शनशास्त्रोंमे जो वस्तु जिस स्वरूपकी नही, वह तदीय धर्मयुक्तरूपसे भासमानस्थलमे अर्थात् अन्यके अन्यधर्मरूपसे प्रकाशमानस्थलमे षड्विधमत सुप्रसिद्ध है। इसके दृष्टात स्वरूप शुक्तिरजत, रज्जुसर्पादि लोकप्रसिद्ध स्थल यहा गृहीत किये जाते है। शुक्तिमे जब रजतकी प्रतीति होती ह तब

(१) असत् रजतकी प्रतीति होता है यह (असत् ख्यातिवाद) शून्यवादी बौद्धोंको अभिमत हे। ऐसे मतको असत्ख्याति कहते हे। असत्गोचर ज्ञान असत्ख्याति है। रजतभ्रम शुक्तिविषयक या रजतविषयक नही हे। सुतराम् वह निर्विषयक हे। निर्विषयक होनेसे असत्गोचर कहा जाता है।

(२) सत् रजतकी प्रतीति होती हे यह रामानुजियोंको अभिमत है। यह मत सत्ख्याति नामसे प्रसिद्ध हैं। शुक्तिमे रजतका अवयव सत् (व्यावहारिक) है। वह सत्य अवयव शुक्तिगत रहनेसे शुक्तिरजतरूप प्रतीति होती है, क्योंकि सत्य विषयकाहि ज्ञान होता है असत्यका नही। रज्जुदेशमे सर्पाश विद्यमान रहनेसे सर्परूपसे ज्ञान सत्य है।

(३) अभ्यन्तरस्थ ज्ञानहि बाह्य रजतरूपसे प्रतीत होता है, यह विज्ञानवादी बौद्धोंको अभिमत है। यह मत आत्मख्याति कहलाता है। इसमतमे बाह्य रजत् नही हे किंतु आन्तर विज्ञानरूप जो आत्मा उसके धर्मरूप रजतकी बाह्य प्रतीति दोषबलसे होती है।

(४) शुक्तिका इदमंशका प्रत्यक्ष और रजत्की स्मृति होती है, यह प्राभाकर मीमांसकोंको अभिमत है। यह ' अख्याति ' नामसे प्रसिद्ध है। उक्त दो ज्ञानका विवेकाभाव तथा उनके विषयोंका विवेकाभाव ' अख्यातिवाद ' का पारिभाषिक अर्थ है।

(५) देशान्तरास्थित सत्य रजत्मे अवस्थित जो रजतत्व उसका भान होता है, यह न्यायवैशेषिक लोगोका अभिप्राय है। यह मत ' अन्यथाख्याति ' कहा जाता है। अन्यरूपसे प्रतीति होनेके लिये उस ' अन्यका ' कहीपर रहना आवश्यक है। अतः असन्निहित रजत्का अन्यत्र सत्व मानना चाहिये।

(६) अन्यत्र विद्यमान रजतका प्रत्यक्ष नही होता है किंतु व्यावहारिक शुक्तिरूप आश्रयमे (अधिष्ठानमे) प्रतीति-समकालीन (प्रातिभासिक) रजत्की तत्कालीन उत्पत्ति और उसका भान होता है यह अद्वैत वेदान्तियोंको अभिमत है। इसको अनिर्वचनीयख्याति कहते है। शुक्तिरूप व्यावहारिक सत् पदार्थके दृष्टिसे विचार करनेसे उस रजत्को सत् नही कह सकते, वह असत् भी नही, वह सदसत्‌रूपभी नही है। जो प्रतिभात होता है अथच सद्रूपसे या असद्रूपसे या सदसत्‌उभयरूपसे निर्वचनही नही है वह अनिर्वचनीय कहलाता है।

(ख) **उक्त मतकी तुलनाः**—सत्ख्याति और अख्यातिवादमे भ्रान्ति स्वीकृत नही कर सकते। सत्ख्यातिवादमे, शुक्तिरजतस्थलमे रजत रहनेसे रजतप्रतीति भ्रान्ति नही हो सकती, वैसेही अख्यातिवादीके मतमेभी भ्रम सिद्ध नही होता। ' इदं

रजतम् ' इस ज्ञानस्थलमे इद का प्रत्यक्ष यथार्थ है और रजतका स्मरणभी यथार्थ (अबाधित) है। अपरमतचतुष्टयमे भ्रान्ति स्वीकार कर सकते है। उनमसे कोई मतमे पुरोवर्ता शुक्तिदेशमे असत् रजतकी प्रतीति, किसी मतमे धीरुप रजतकी बाह्यरूपसे प्रतीति मतान्तरमे देशान्तरस्थ रोप्यकी पुरोवर्त्तिरुपसे प्रतीति तथा अप रके मतमे अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्ति और प्रतीतिस्वीकृत होती है।

अब अद्वैतवेदान्तिसम्मत अनिर्वचनीयवादके साथ अन्यान्य मतकी तुलना की जाती है।

असत्ख्यातिवादी परमार्थत असत्की सद्रूपसे ख्यातिको असत् ख्याति कहते है। वेदान्तमतमे प्रामाणिक असत्व माना नही जाता। इसमतमे प्रातीतिक सत्व अगाकृत होनेसे असत् ख्याति नही है। सतख्यातिमतमे रजत उत्पादक सामग्रीजनित उत्पद्यमान रजत शुक्ति उत्पादन समयमेहि शुक्तिस्वरुपकेसाथ उत्पन्न होता है। उक्त वेदान्तमतमे ऐसा नहीं हे किन्तु उक्त रजत प्रतीति समयमेहि उत्पन्न ऐसा माना जाता है। उक्त रजत व्यावहारिक नही किन्तु प्रातिभासिक हे। आत्मख्यातिवादमे रजत आन्तर सत्य हे और उसकी बाह्यदेशमे प्रतीति भ्रान्तिपदवाच्य है अतएव इस मतमे बाह्य रजत माना नही है। उक्त वेदान्तमतमे बाह्य रजत स्वीकृत होता है। शुक्तिरजत और उसका ज्ञान समकालीन उत्पन्न होता हे, उभयही प्रतिभासमात्रकालस्थायी है। प्रभाकरमतमे प्रकृतस्थलमे दो पृथक् ज्ञान माने जाते है, शुक्ति और रजतका विशेष्य विशेषणभाव अगीकृत नही होता है। इस

हेतुसे भ्रान्तिज्ञान स्वीकृत नही होता। न्यायवैशेषिक मतमे 'इदम्' और 'रजतम्' इन वस्तुद्वयका तादात्म्यावगाहि विशिष्ट ज्ञान (रजतत्वविशिष्ट शुक्तिज्ञान) स्वीकृत होता है। इस हेतुसे भ्रमज्ञान मानते है। न्यायवैशेषिक और अद्वैतवेदान्त इन उभय मतमे विशिष्टज्ञानरूप भ्रम स्वीकृत होते हुए भी वेदान्ति लोग भ्रम विषयका अनिर्वाच्यत्व स्वीकार करते है, नैय्यायिक उसका सत्यत्व अंगीकार करते है। न्यायमतमे अनिर्वचनीय या असत् ख्यातिगोचर होता नही है, किन्तु सत् ही सदन्तर रूपसे गोचरीभूत होता है। अन्यथाख्यातिवादीके मतमे शुक्ति-रजतज्ञानस्थलमे भ्रमका विषयीभूत या विशेषणभूत रजत पूर्वदृष्ट सत्यरजत व्यतिरिक्त कुछभी नही है। अद्वैतवेदान्तिके मतमे वह रजत पूर्वदृष्ट सत्य रजत नही है, परतु अनिर्वचनीय वस्तु-विशेष है।

निम्नलिखित विचारस्थलमे अपरमत खण्डनपुरस्सर अद्वैत-वेदान्तमतका सिद्धान्त प्रतिष्ठित करनेका प्रयास किया जावेगा।

(ग) असत्ख्याति खण्डन—

शुक्तिरजत जब देखते है तब वह रजत असत् नही हो सकता क्योंकि उसकी अपरोक्ष प्रतीति होती है। असत् (सत्ता स्फूर्तिशून्य) होते हुये प्रतीत होना विरुद्ध है। सत् और असत्का संबध नही हो सकता। असबद्ध वस्तु ज्ञानद्वारा प्रकाशित नही हो सकती। जोभी शब्द असद् प्रतिपादनमे सक्षम है। [जैसे वन्ध्यापुत्र, शशशृंग इत्यादि असत्बोधक शब्द-द्वारा विकल्पज्ञान (वस्तुशून्य शब्दज्ञानानुपातिज्ञान) उत्पन्न होता

है] तोभी इंद्रिय कभीभी असन्निकृष्टका ग्राहक नहीं होता। तुच्छ पदार्थका आकार वृत्तिगत होते हुएभी वृत्तिका संबंध तुच्छगत नहीं होता। विकल्पज्ञानस्थलमें पदार्थकी अपरोक्ष गोचरता नहीं होता। यदि असत् (निष्प्रकारक) है तो प्रत्यक्ष द्वारा 'रूप्य' ऐसे विशेष प्रतिभासका अभाव हो जाता। यद्यपि उत्तरकालमें वह वस्तु (रजत) प्रतिभासित नहीं होती तथापि जिस समय वह प्रतिभासित होती है तब उसको विद्यमान कहना पडेगा, अन्यथा स्वप्रतिभास समयमें कोईभी पदार्थका अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा। यदि अत्यन्त असत्को आरोपणीय मानोगे तो प्रतिभासभेद और तदनुसार प्रवृत्ति अनुपपन्न होगी। उक्त भ्रान्ति निवृत्तीके अनन्तर शुक्तिज्ञान होनेसे उस रजतका बाध (निषेधप्रत्यय) होता है। वह प्रतिभास यदि असत् होता तो उक्त बाध होना असभव है। प्रसक्तकाहि बाध होता है। असत्की प्रसक्ति अशक्य होनेसे उसका निषेध होना संभव नहीं है। अतएव बोध और बाधद्वारा अवगत होता है कि उक्तरजत असत् नहीं है। उक्त प्रतिभास साधिष्ठान होता है, और 'नेदंरजतं' ऐसा बाध सावधिक है ऐसे नियम होनेसे तथा उसकी अपरोक्ष प्रतीति होनेसे उस प्रतीतिका आलम्बन नरशृगवत् असत् नहीं है। अतएव असत्ख्यातिवाद समीचीन नहीं है (१)

---

(१) (क) सामर्थ्यम्यच तुन सामर्थ्यं इति विषयसापेक्षत्वेन विषयस्य असतश्चकार्यशाप्यविकल्पासहत्वात् असतोएव असत्ख्याति (भामती)

(ख) प्रमाणेनासदशस्यानुल्लेखे असत्ख्यातित्वासिद्धे उल्लेखेतु प्रमाणस्याप्रमाणतायाः (असत्विषयकत्वात्) असतो वा सत्वस्य प्रसगात् (आत्मतत्वविवेकदीधिति)

(घ) सत्ख्यातिखण्डन :—

रामानुजका मतभी संगत नही हे। इनका कहना यह है कि शुक्तिमे जो रजत-भ्रान्ति होती है वह उसमे रजतका अवयव हानेसे होता है और यह रजतका अवयव शुक्तिमे सत् है। परतु समझो कि जहां जहां जिस समय शुक्तिमे रजतकी भ्रान्ति होती है उसी समय शुक्तिको अग्नि-संयोग किया जावे और उसी क्षणमे शुक्तिका ध्वंस होकर उसकी भस्मकी प्राप्ति हो; इसस्थलमें रजतज्ञानकी निवृत्ति इसमतानुसार नही हुई। शुक्ति-ध्वंस और भस्मके उत्पत्तिके पहिले रजतकी निवृत्ति न होनेसे भस्मदेशमे रजतका लाभ होना अवश्य है ; क्योंकि रजतद्रव्य तैजस है उसका गंधकादि संबंधविना ध्वंस नहीं होता। अतएव भ्रमस्थलमे व्यावहारिक रजतरूप सत् पदार्थकी ख्याति होती है ऐसा सत्ख्यातिवाद असंगत है। जिस स्थलमे एक रज्जुमे भिन्न भिन्न दश व्यक्तियोंको भिन्न भिन्न पदार्थ प्रतीत होते है (यथा एकको सर्पप्रतीति दुसरेको दंडप्रतीति, तिसरेको माला प्रतीति चौथेको वृक्षकी छाला इसी प्रकार जलधारा, रेखा इत्यादि भिन्न भिन्न प्रतीति) उसस्थलमे उस स्वल्प रज्जुदेशमे ये भिन्नभिन्न पदार्थोंके अवयव रहना अशक्य है ; क्योंकि जो द्रव्य मूर्त होता है वह स्थाननिरोध करता है। यदि कहा जावे कि रज्जु-देशमे प्रतीत वे सर्पादि, स्थान निरोध नहीं करते तो उनको सत् कहना विरुद्ध और निष्फल है। यदि अवयव स्थाननिरो-धिका हेतु न हो, और अवयवीद्वारा यदि कोई कार्य साधित

न हो तो उसको किस प्रकार सत् कहें। उनकी प्रतीतिमात्र है और उनके द्वारा अन्य कार्य नहीं होता ऐसा कहनेसे अनिर्वचनीयतादि सिद्ध होगी। अर्थात् सर्पादि सत् नहीं है असत्‌भी नहीं परतु वे प्रतीतिस्वरूपमात्र (प्रातिभासिक) है, व्यावहारिक नहीं है। इस हेतुसे उक्त सर्पादि व्यावहारिक देश निरुद्ध नहीं करते।

शुक्तिदेशमे रजतज्ञान होनेके पश्चात् उस शुक्तिका ज्ञान होनेसे शुक्तिमे रजत नहीं ऐसा अनुभव होता है। शुक्ति दशमे सत् रजत स्वीकार करनेसे उक्त बाधज्ञान (रजताभावज्ञान) निर्विषय होगा। सत्ख्यातिवादके अनुसारसे शुक्तिदेशमे व्यावहारिक रजत होनेसे तत्कालमे व्यावहारिक रजताभाव रह नहीं सकेगा। व्यावहारिक रजत रहनेसे शुक्तिमे रजत नहीं है एता दश बाधज्ञान हो नहीं सकेगा अथच एतादश बाधज्ञान अनु भवसिद्ध है। उक्त बाध-प्रत्यय-उक्तरजत प्रतीतिके समान बाधित नहीं होता। अतएव रजतका अभाव वस्तुतः है। उक्त बाधज्ञान द्वारा जाना जाता है कि शुक्तिमे जो रजत प्रतीत हुआ वह व्यावहारिक सत नहीं किंतु प्रातीतिक है। वह यदि पारमार्थिक या व्यावहारिक सत होता तो व्यवहार कालमे उसका बाध कभीभी नहीं होता। रजत प्रातीतिक होनेसे व्याव हारिक शुक्तिके ज्ञानद्वारा उस रजतका बाधज्ञान सुसंगत होता है। शुक्तिमे व्यावहारिक रजत होनेसे शुक्तिके समान सर्वदा उसका प्रत्यक्ष हो सकताथा परतु ऐसा नहीं होता। 'इदरजत' ऐसी प्रतीति तात्कालिक रजत स्वीकार करनेसेभी उपपन्न होती है,

इस उपपत्तिके लिये पूर्वसिद्ध रजतका अवयव मानना उचित नहीं है। (२) व्यावहारिक रजतमे रजतावयवकी अपेक्षा है परंतु प्रातिभासिक पदार्थमे उसकी (अवयवकी) अपेक्षा नहीं है।

पूर्वपक्षी (सत्ख्यातिवादी):— शुक्तिदेशमें जो रजतका अवयव है वही सत्-रजतकी सामग्री है।

सिद्धान्ती:---इसस्थलमे यह प्रष्टव्य है कि रजतावयवका रूप उद्भूत है अथवा अनुद्भूत है ? उद्भूतरूप कहनेसे रजतावयवकाभी रजतके उत्पत्तिके पहिले प्रत्यक्ष होना उचित है। यदि अनुद्भूतरूप कहोगे तो अनुद्भूतरूपविशिष्ट अवयवसे रजतभी अनुद्भूतरूपविशिष्ट होगा सुतरां रजतका प्रत्यक्ष नहीं होगा (३) अतएव इंद्रियदोषरहित लोगासे रजत गृहीत न होनेसे और रजतका बाध होनेसे तथा वह मिथ्या ऐसा सर्व लोगोंके प्रतीतिगोचर होनेसे (एतावत्काल शुक्ति मिथ्याहि रजतरूपसे प्रतिभात हुआथा ऐसी उत्तरकालीन अनुसंधानात्मक प्रत्यभिज्ञा होती है) भ्रान्तिस्थलमे उत्पन्न प्रातिभासिक रजतका मिथ्यात्वहि सिद्ध होता है, वह सत्य रजत हो नहीं सकता (४)

(२) शुक्तिषु रजतावयवाना सत्वे शुक्तिदाह क्षारभाववत् द्रवीभावस्याप्युपलब्धिप्रसगः। (वेदान्त कल्पतरुपरिमल)

(३) भूतानामेव पचीकृतत्वात् भौतिकाना तदभावात् अन्यथास्तभादौ अपिरजतप्रतीतिप्रसगात्। (नृसिंहाश्रम विरचित सक्षेपशारीरकतत्वबोधिनी-अमुद्रित)

(४) सत्ख्यातिखण्डनप्रसगमे अधिकांशविचार हिन्दीवृत्तिप्रभाकर ग्रथसे लिया है। सत्ख्यातिवादका विशेष खण्डन संस्कृतसिद्धान्तसिद्धाञ्जन ग्रथमे (चतुर्थ भाग) पाया जाता है।

(ङ) सदसत्ख्यातिखण्डन :—

ख्यातिमात्र केवल असत विषयक या सत्-विषयक नही होता किन्तु सदसत् उभयविषयक (सांख्यसम्मत) होता हे ऐसा मत समत नही हे । जो सत् नही या असत् नही वह सदसत्का मिश्रणस्वरूप कैसे होगा ? सत् ओर असत् परस्पर विरोधी हे । एकही वस्तु सत् आर असत नही हो सकती । एकही काल भेदसे उभयाकार होती हे ऐसाभी नही है । एकहीका काल भेदसे उभयाकारत्व होनाही असभव है । इस स्थलमे प्रश्न्य है एकतर आकारकालमे (रजताकारकालमे) अन्यतर कार (शुक्त्याकार) नष्ट होता हे या रहता हे ? आद्यपक्ष समीचीन नही हे क्योंकि विभ्रमानन्तरभी " यह वही शुक्ति " ऐसी प्रत्य भिज्ञा होती है । द्वितीयभी नही । ऐसा होनेसे शुक्तिज्ञान कालमे पूवप्रतीत रजतकाभी प्रत्यय है ऐसा मानना पडेगा परतु ऐसा नहा होता । अतएव वस्तु स्थित या नष्ट होनेसे एक अन्याकार नही हो सकता ।

(च) ज्ञानात्मक रजत ख्याति खण्डन—

बोध ओर बाधद्वारा ज्ञानात्मक (विज्ञानवादी बौद्धसम्मत) रजत सिद्ध नही होता । वह रजत यदि आन्तर विज्ञानाभिन्न होगा तो ' मै बाह्य रजत जान रहा हू ' ऐसा भेदानुभव न होता । सुखादिके समान रजतकी आन्तररूपसे प्रतीति न होनेसे 'इदंरजत ऐसा प्रत्यय बहिर्विषयक होता है ऐसा स्वीकार करना होगा यह प्रत्यय इदत्व आर रजतत्व के सामानाधिकरण्यका विषय करता है अतएव उस सामानाधिकरण्य विषयमे ही उक्त प्रत्यय

प्रमाण होता है, रजतके आन्तरत्व विषयमे उक्त प्रत्यय प्रमाण नही है। बहिर्देशमे इदंकारास्पद रजत प्रतीत होनेसेही लोभी मनुष्य उसके ग्रहणार्थ बहिर्देशमे भागता है। रजत देहाभ्यन्तर मे रहनेसे 'मरेमे रजत है' ऐसी प्रतीति होती। प्रतीतिही वस्तु स्वीकारमे शरण है। विज्ञानसे रजतका विच्छेद प्रतीत होनेसे वह आन्तर नही है। बाह्य देशमे शुक्ति मानकर शुक्तिरजतको देहाभ्यन्तरस्थित कहनाभी सगत नही है। शुक्तिसे व्यवहित आतरदशमे रजत होगा तो उसमे शुक्तिधर्म इदंताकी प्रतीति होना असंभव है। अतएव शुक्तिरुप्यादि भ्रम-स्थलमे उस रुप्यादिका बाह्यत्वका निषेध और आन्तरत्वका विधान अनुभवबलसे नही कर सकते। 'नित्यत्वकार्यत्वाभ्याम् धरूपरजता-निरुपणाच्च'।

बाधप्रत्ययके बलद्वारा भी ज्ञानात्मक रजत सिद्ध नही होता। 'यह रजत नही' ऐसा बाधज्ञान पुरावर्ती द्रव्यमे रजतके भेद-मात्रको विषय करता है, रजतके ज्ञानस्वरुपत्वको अवगाहन नही करता है। अर्थात् उक्तज्ञान पुरोवर्ती द्रव्यको रजतसे विवेचन करता है। किन्तु रजतके ज्ञानाकारत्वको गोचरीभूत नही करता, उक्त बाधज्ञान प्रसक्तका प्रतिषेध करता है, अप्रसक्तका विधान करता नही। जो प्राप्त है वही सर्वत्र बलवत् प्रमाणद्वारा बाधप्राप्त होता है। अप्राप्त या प्रमित (प्रमाणगम्य पदार्थ) बाधित नही होता। उक्त स्थलमे दोषपरिकल्पित अवभासमान रजतही प्रसक्त है। इस प्रसक्ताही प्रतिषेध उक्त ज्ञानद्वारा होता है। वह प्रतिषेध

पुरोवर्ती बाह्य प्रदेशमे होता है, उस रजतका अधिष्ठान बाह्य देशस्थरूपसे प्रतिभात होता है। वह रजत यदि आन्तर होता तो 'यह बहिस्थ रजत नही किन्तु आन्तर है' ऐसा बाधप्रत्यय होता। परन्तु ऐसा प्रत्यय नहीं होता है। विप्रकृष्ट रजत ज्ञात होकरही बाधकालमे नेद रजत ऐसा प्रत्यय होता। जो असंनिहित है वह ज्ञानाकार हो नहीं सकता। शुक्तिका ज्ञान होनेके पश्चात् 'मेरा मिथ्या रजत प्रतीत हुआथा' ऐसा बाध सर्वानुभवसिद्ध है। उक्त मतानुसार रजतमे 'मिथ्या बाह्यना प्रतीत हुईथी' ऐसा बाध होना उचित है किन्तु ऐसा नहीं होता। अतएव आभ्यन्तर रजत बहिर्वत् अवभासप्राप्त होता है ऐसा मत संगत नहीं है। ऐसा होनेसे बाह्य शुक्तितत्वके ज्ञानद्वारा उस रजतका बाध्यत्व, बाह्य पुरोवर्ती पदार्थमे प्रवृत्ति, बहि पदार्थके साथ रजतका तादात्म्यानुभव, ये सब उपपन्न नहीं होते।

(छ) अख्याति खण्डन —

शुक्तिरजत प्रतीतिस्थलमे शुक्तिका इदमंशका प्रत्यक्ष और रजतकी स्मृति ये दो (उभयही यथार्थविषयक) ज्ञान होते है, ऐसा मत (प्रभाकरमत) खण्डित करते हैं। ये दो ज्ञानसे रजतार्थि मनुष्यकी रजत लेनेको प्रवृत्ति उपपन्न नहीं हो सकती। 'इद' ऐसे ज्ञानमे प्रवृत्ति नही हो सकती। एसा होनेसे अतिप्रसंग हो जायगा अर्थात् रजतार्थि लोष्टादिमेभी प्रवृत्त होगा। नो विशेषज्ञान (इद रजतं) है उसका विषय सामान्य (इद) नहीं हो सकता। रजतज्ञानमात्रसेभी प्रवृत्ति नहीं हो

सकती, अन्यथा देशान्तरमेभी प्रवृत्ति प्रसंग होगा। और रजत-
ज्ञान शुक्तिविषयत्व विना वहापर प्रवर्तक नही होगा। अन्य
विषयसे अन्यत्र प्रवृत्ति युक्तियुक्त नही है। ज्ञान स्वविषयमेही
प्रवर्तक होता है। उक्त रजतादिज्ञान पुरोवर्ति विषयक होता है
ऐसा कहना होगा क्योंकि वह ज्ञान पुरोवर्तिमे नियमपूर्वक प्रव
र्तक होता है। जो ज्ञान तदर्थोंमे इसप्रकार प्रवर्तन करता है
वह ज्ञान तद्गोचर होता है। अतएव अनुमित होता है कि-
रजतज्ञान (पक्ष) शुक्तिविषयक (साध्य) क्योंकि वह तद्गो-
चर व्यवहारका हेतु (हेतु) जैसा शुक्तिज्ञान (दृष्टांत)। सुतरा
शुक्तिरजत विशिष्ट ज्ञान है ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है। उक्त
ज्ञानद्वयके भेदाग्रहसे (अविवेकसे) प्रवृत्ति उपपन्न होती है ऐसा
कहना सगत नही है। 'इदं' का प्रत्यक्ष और रजतका स्मरण
ये ज्ञानद्वय यदि भासमान् हो तो इनका विवेकाभाव नही हो
सकेगा। 'दो है' ऐसा ज्ञात होनेके लिये द्वित्वके आश्रय-
भूत वस्तुद्वयका भेदज्ञान आवश्यक है। अतएव भेदाग्रह नही
होगा। यदि उक्त ज्ञानद्वय भासमान न हो तो उनका अस्ति-
त्वही प्रसिद्ध नही होगा। औरभी, अभावरूप अविवेक प्रवृत्तिका
प्रयोजक हो नही सकता। प्रवृत्तिका जो विषय उसका ज्ञान
और इष्ट उपस्थितिही प्रवृत्ति की कारण है। सुतरा उक्त ज्ञान-
द्वय स्वीकार करनेसे प्रवृत्ति संगत नही होती किन्तु विशिष्ट-
ज्ञान स्वीकार करनेसेही रजतार्थी की प्रवृत्ति सुसंगत होती है (५)

(५) न च स्वतन्त्रोपस्थितेष्टभेदाग्रहात् प्रवृत्तिः, तन्मते (प्रभाकरमते) भेदस्य स्वरूपात्मकतया तदग्रहायोगात्। लाघवेन इष्टोपस्थितिरेव प्रवर्तकत्वाच। (अद्वैतचिंतामणि)

इद और रजत इन उभयका संबंध स्वीकार करनेसेही रजतत्व विशेषणरूपसे (गौणरूपसे) प्रतिभात होकर ' इद रजत ' ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो सकेगी । यदि इद और रजतका संबंध भान न हो तो ' इद ' और ' रजतत्व ' स्वतंत्र होगा । ऐसा होनेसे ' इद इति, ' ' रजतत्व इति ' ऐसा बोध उत्पन्न होगा, इदंरजत ऐसा बोध नही होगा । अथच ऐसा बोध तो पाया जाता है । अतएव इदविशिष्ट रजतकी प्रतीति स्वीकार करना पड़ेगी । ऐसा स्वीकार करनेसे उक्त अनुभव सूपपन्न होता है । अनुभवका अपलाप करना अनुचित है । इद रजत यह यदि ज्ञान द्वय होगा तो ऐसा निश्चय होना चाहिये कि, इदपश्यामि रजत स्मरामि । किन्तु ऐसा नही होता । दो अंश समान संवेदित होनेसे एक (इदमंश) प्रत्यक्षलब्ध और अपर स्मरणफल ऐसा विभाग नही हो सकेगा । पूर्वदृष्ट रजत प्रतिभात होनेसे इदरूपसे भान नही होता किन्तु जहापर रजत दृष्ट हुआथा वहाका रजत ऐसा बोध होगा । दोषवशात् तत्ताका प्रमोष (लोप) होनेसे इद रूपसे भान होता है ऐसा कहना अनुचित है क्योंकि तत्ताका प्रमोष होनेसे स्मृतित्वका निश्चय नहीं हो सकेगा । शुक्तिके इदमंशस्वरूपमे रजतकी स्पष्ट प्रतीति होनेसे वह पुरोवर्ती शुक्तिका अनुसारी है, पूर्वदृष्ट का अनुसारी नहीं है । " स्पष्ट " शब्दसे भ्रान्तिकालीन पुरोदेश संश्लिष्टरूपसे रजतका स्फुरण और पुरोवस्थितत्वरूपसे अवभासन तथा बाधज्ञानके उत्तरकालमे इद सहित संश्लिष्टरूपसे अनुसधीयमानत्व (एतावन्तं

कालं इदं रजतं इति अभात्) ज्ञापित होता (६) शुक्ति-देशमें रजत अनुभूतरूपसे प्रकाशित नहीं होता किन्तु अनुभूयमानरूपसे (साक्षात्कार कर रहा हूँ ऐसा) होता है। अनुभूतता ग्रहण स्मरण है, अनुभूयमानता ग्रहण स्मरण नहीं है। प्रवृत्ति-अनुरोधसे भी रजतका स्मरणज्ञान नहीं है किन्तु इद-विशिष्ट रजतका प्रत्यक्षज्ञान स्वीकार्य है। प्रवृत्ति-विषयकत्वका अभाव होनेसे तथा तद्विषयक इच्छा-जनकत्वका अभाव होनेसे, रजतस्मरण शुक्तिदेशमें प्रवर्तक नहीं हो सकता। सन्मुखस्थित इद पदार्थमें रजतबुद्धि होती है इसलिये, रजतार्थि होकर उसके ग्रहणमें मनुष्य प्रवृत्त होता है। अतएव वह भेदाग्रह एक तृतीय विशिष्टज्ञानको (यह रजत ऐसे ज्ञानको) उत्पादन करकेही ऐसे प्रवृत्तिका कारण होता है ऐसा कहना होगा। शुक्तिदेशमें इदंविशिष्ट रजतका ज्ञान यथार्थ नहीं किन्तु भ्रमरूप होगा। (७)

(ज) अन्यथाख्याति खण्डन :—

पूर्वपक्ष रजत अन्यत्र रहता है। दोषवशात् शुक्तिमें देशान्तरीय

(६) स्मृतेरज्ञातः प्रमापासंभवात्, स्मृतिश्चेत् इद रजतज्ञान तदाग न्धादिस्मृतिवत् स्वार्थं गृह्यमानात् विविच्यात् न विविनक्तीत्यतो न स्मृतिः।
(वाक्यार्थदर्पण -अमुद्रित)

(७) रजतमिदमिति सामानाधिकरण्येनैकार्थप्रतिभासात् तन्मतेच सवित्तेरपराश्रत्वात् रजताद्यगमाभिधानेन तदर्थिनस्तत्र प्रवृत्तेः बाधप्रत्ययस्य तथाविधबाधनिरोधपरत्वेन प्रादुर्भावात् न तावत् अख्यातिः
(न्यायमंजरी)

रजतही रजतरूपसे ग्रहण होता है।

सिद्धांत (१) बोध बाध द्वारा अन्यथाख्यातिवाद सिद्ध नहीं होता इसका निरुपण करते है। प्रकृतस्थलमे उक्त रजतज्ञान परोक्ष नहीं है क्योंकि पुरावर्ती देशमे रजत साक्षात् कर रहा हूं ऐसा अनुभव होता है। यह ज्ञान देशान्तरीय रजतका नहीं है। नेत्रद्वारा व्यवहित रजतका ज्ञान संभव नहीं हो सकता। क्रिम (निर्णीत) सहकारी विना इन्द्रियका कार्यजनकत्व नहीं होता। विशेषण और विशेष्य एतदुभयका सन्निकर्ष न होनेसे विशिष्टका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। विशेष्यके साथ सन्निकर्ष और विशेषणका ज्ञान ऐसी विशिष्ट ज्ञानकी सामग्री रहते हुए भी विशेषणके साथ सन्निकर्षका अभाव होनेसे विशिष्टज्ञान दृष्ट होता नहीं, अन्यथा दण्डहीन पुरुषका ' दण्डी ' ऐसा विशिष्ट प्रत्यक्ष हो सकता है। बुद्धि विशेषणको न जानते हुए विशेष्य को अवगाहन नहीं करती। अपरोक्षज्ञान यदि असन्निहित वस्तुका आकार धारण करे तो वह सर्वाकारयुक्त हो जायगा। प्रत्यक्ष, वर्तमान संबद्ध योग्य पदार्थकोही ग्रहण करता है, यही नियम है। व्यवहित रजतगत रजतत्वका ज्ञाताके साथ संबंध संभव नहीं है। सुतरां प्रत्यक्षज्ञानस्थलमे पुरोवर्तिदेशमे रजतका सत्ता अवश्य होना उचित है। जिसहेतुसे रजत प्रत्यक्ष हो रहा है अथच उस स्थलमे कोई वास्तविक रजत विद्यमान नहीं है इसीहेतुसे उसस्थलमे कोई प्रातिभासिक या अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न होता है ऐसा स्वीकार करना होगा।

पूर्वपक्ष—' सुरभिचंदन ' इत्यादिके समान ज्ञानरूप प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) द्वारा रजतत्व जातिका प्रकृतस्थलमें (शुक्तिरजत प्रत्यक्षस्थलमें) प्रकाररूपसे (विशेषणरूपसे) भान हो सके अर्थात् रजत दूरदेशमें रहनेसेभी ऐसे सन्निकर्ष द्वारा उसकी प्रत्यक्ष प्रतीति इस स्थलमें हो सकेगी । सुरभिचंदनज्ञान इसका दृष्टांत है पहिले चंदन आघ्राण करके जाना गया कि चंदनमें सौरभ है, पश्चात् दूरसे चंदन देखकर घ्राण न लेकर कह सकते है कि सुरभिचंदन है । इस स्थलमें पहिले का सौरभ ज्ञान हीं सौरभके चाक्षुष प्रत्यक्षमें प्रत्यासत्तिरूप होता है ।

सिद्धांतः-सुरभिचंदनदृष्टान्त समीचीन नही है । उक्त स्थलमें सुरभिका प्रत्यक्ष नहीं होता । वह यदि साक्षात्कार होता तो ऐसा अनुव्यवसाय (मानसप्रत्यक्ष) होता कि चंदन देखरहा हूं और सौरभका घ्राण ले रहा हूं । परंतु ऐसा नही होता । चंदन देख रहा हूं और सौरभ स्मरण कर रहा हूं ऐसा सार्वजनीन अनुभव होता है । अतीत दण्डमें " इदानीम् चक्षुद्वारा दण्ड जान रहा हू " ऐसा अनुभव न होनेसे तदंशमें चक्षुजन्यत्व नही है किन्तु संस्कारसे जन्य होनेसे स्मृति है । दण्ड स्मरण कर रहा हूं ऐसा अनुभव भी होता है । अतएव ज्ञान प्रत्ययासत्ति नही है । औरभी भ्रान्तिस्थलमें ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष स्वीकार करनेसे अनुमान प्रमाणका उच्छेद होगा । " पर्वतो वन्हिमान " ऐसा अनुमिति-ज्ञान अनुमान-प्रमाण-जनित होता है । हेतुमें (धूमरूपहेतु) साध्यके (वन्हिके) व्याप्तिके (नियतसंबंध) स्मरणसे अथवा साध्यके व्याप्तिके उद्बुद्ध संस्कारसे अनुमितिज्ञान होता है ।

साध्यके व्याप्तिकी स्मृति होनेसे व्याप्ति निरुपक साध्यकीभी स्मृति होती है। अतएव प्रकृतस्थलमे अनुमितिकी सामग्री जो व्याप्तिज्ञान और प्रत्यक्षकी सामग्री जो वन्हिका पूर्वानुभवजनित स्मृतिरूप ज्ञानलक्षणा सन्निकर्ष तदुभय विद्यमान रहता है इसलिये पर्वतमे वन्हिकी अनुमिति न होकर वन्हिका प्रत्यक्षही हो सकेगा। पर्वतके साथ नेत्रका संयोग और वन्हिके स्मृतिसे 'पर्वतो वन्हिमान' ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञानही होगा। एक विषयमे यदि अनुमितिकी सामग्री और प्रत्यक्षकी सामग्री विद्यमान रहे तो उस विषयकी अनुमिति नही होती किन्तु प्रत्यक्ष होता है। सुतरा पक्षमे (पर्वतमे) साध्य निश्चयरूप अनुमितिज्ञानका जनक अनुमान प्रमाण का अगीकार निष्फल होगा। अतएव स्मृति-ज्ञानसहित इन्द्रिय-सयोगसे या सम्कारसहित इन्द्रियसयोगसे व्यव-हित वस्तुका प्रत्यक्षज्ञान सभव नही है अथच शुक्तिरजत प्रत्यक्ष है। सुतरा शुक्तिका रजतस्वरूपसे प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभव नही है। यदि अन्यत्र इन्द्रिय सयोगादि-अजन्य ज्ञानने साक्षात्कार कर रहा हू ऐसा अनुभव होता तो ज्ञानको प्रत्या सत्ति कह सक्ते थे परतु ऐसा होता नही। प्रत्यभिज्ञाको (सोय देवदत्त) दृष्टांत रूपसे उपन्यस्त किया नही जा सक्ता क्योंकि प्रत्यभिज्ञाभी तदाशमे स्मरणही है, तदुपलक्षित ऐक्याशमे प्रत्यक्ष (क्योंकि वह इंद्रियसन्निकृष्ट) है। "अनुव्यवसायश्च विप्रति-पन्न इति न ततोपि ज्ञानप्रत्यासत्तित्व"। औरभी ज्ञानमात्र ही प्रत्यासत्ति नही किन्तु जिस अवच्छेदमे जो अनुभूत होता है उस अवच्छेदमे वह ज्ञान प्रत्यासत्तिरूप होता है ऐसा कहना

होगा। परतु शुक्तित्वावच्छेदमे रजत पहिले अननुभूत होनेसे वहापर ज्ञानका प्रत्यासत्तित्व न होगा।

पूर्वपक्ष —दोषही प्रत्यासत्ति है।

सिद्धात —दोषको प्रत्यासत्ति कह नही सकते। विशेषणाशमे (रजतत्वाशमे) जो यथार्थ ज्ञान है उसका अजनक दोष होता है। प्रकृतस्थलमे रजतत्वाशमे ज्ञान यथार्थ है अतएव दोष प्रत्यासत्तिरूप नही है। औरभी, वैशिष्ट्य [शुक्तिमे रजतत्वका वैशिष्ट्य] असत् होनेसे उस असत् वैशिष्ट्य के साथ दोषके सबधाभावके कारण तदीयत्व अनुपपन्न है अर्थात् दोषरूप सबध असत्का नही होगा, क्योंकि असत्का सत्के साथ सबध नही हो सकता। निस्स्वरूप असत्के साथ स्वरूपसबधभी कहा नही जा सकता। सबधविनाभी दोषसे रजतादिकी प्रतीति होगी ऐसा वचन सगत नही है क्योंकि विशिष्ट ज्ञानमात्रमे विशेषण-सन्निकर्षकाभी कारणत्व होता है। प्रकृतस्थलमे विशेषण जो असत् वैशिष्ट्यादि उनकेसाथ दोषका सन्निकर्ष नही होगा। दोषवशात् देशान्तरस्थका ग्रहण सभव नही है। दोष गुरुत्वादिके समान आश्रय परतत्र है, वह स्वाश्रयमे या स्वाश्रय सयुक्तमे कार्यकारी होता है, असन्निहितमे नहं।। किंच दोषको यदि सन्निकर्ष मानोगे तो भ्रमात्मक अनुमिति नही होगी किंतु दोषरूप सन्निकर्ष रहनेसे प्रत्यक्ष ही होगा। दोष यदि इद्रियक सन्निकर्ष होगा तो विभ्रम दोषजन्य नही होगा किन्तु इद्रियजन्य होगा। अत एव विभ्रम दोषजन्य है ऐसे पूर्वपक्षि-सम्मत कार्यकारण भावकी

क्षति होगी । दोषवशात् यदि असन्निकृष्टका भी भान होगा तो ज्ञानके समान-विषयत्वविना दोषसेही विसंवादि प्रवृत्ति संभव होगी अतएव अन्यथाख्याति नही होगी । अतएव देशान्तरीयका सन्निकर्ष न होनेसे भ्रमस्थलमे देशान्तरीय पदार्थ दृष्ट नही होता।

प्रवृत्ति—बोधद्वारा अन्यथाख्याति सिद्ध नही हुई ऐसा प्रतिपादन किया । अब प्रदर्शित करते है कि लोगोंकी शुक्ति ग्रहणमे जो प्रवृत्ति होती है वह अन्यथाख्यातिवादमे संगत नही है। ज्ञान स्वविषयमे प्रवर्तक होता है । रजतज्ञानका विषय जो रजत उसका अन्यत्र अस्तित्व रहनेसे वहापरभी प्रवृत्ति होना उचित है, सन्मुखदेशमे प्रवृत्त होना संगत नही है ।

पूर्वपक्ष - रजत उसका (ज्ञानका) विषय नही है, शुक्तिही विषय है।

सिद्धात—अन्याकारज्ञान अन्यालबन नही होता, यह ज्ञानविरुद्ध है । यदाकार जो ज्ञान है वह तदालबन है यह अन्यत्र दृष्ट होनेसे रजतज्ञानका शुक्त्यालम्बनत्व माननेसे विरोध होगा ।

पूर्वपक्ष—ज्ञान शुक्तिमे रजतत्वके वैशिष्ट्यको विषय करता है अतएव अनुभवविरोध नहीं है किंवा वहापर प्रवृत्तिभी अनुपपन्न नही है । जहापर इष्टतावच्छेदक वैशिष्ट्यको (जो धर्मयुक्त पदार्थ इष्ट है उस धर्मके सबधको) विषय करता है वहापर ज्ञान प्रवर्तक होता है।

सिद्धात—ऐसा कहना संगत नहीं है। इद रजत ऐसा ज्ञान पुरोवर्ती पदार्थमे रजतत्व-वैशिष्ट्यके अभेदको विषय करता है परतु पुरोवर्तिमे रजतत्वके ससर्गको विषय नही करता , क्योंकि "रजत" ऐसे स्मृतिमे रजत उपसर्जन (प्रकार, गौण) होनेसे रजतत्वका

आरोप सभव नही है। आरोप होनेके लिये आरोप्य की स्वतत्र उपस्थिति होना आवश्यक है। (प्रकृतस्थलमे रजत इस स्मृतिमे रजतत्वकी स्वतत्र उपस्थिति नहीं है)। ऐसा नियम (आरोपमे आरोप्यका स्वतत्र उपस्थिति हेतु यह नियम) न माननेसे संसर्गाभावबुद्धिका नियामक प्रतियोगी आरोपसमयमे तादात्म्यारोप हो जायगा (८) तात्पर्य यह है कि ससर्गाभावबुद्धिका नियामक तादात्म्यारोप नहीं होता, परतु वह भी हो जायगा क्योंकि तादात्म्यारोपमे प्रतियोगीका आरोपभी हो सकेगा, कारण, पूर्वपक्षिलोग आरोप्यकी स्वतंत्र उपस्थिति आरोपके लिये स्वीकार नही करते। स्वतत्र उपस्थिति आरोपमे कारण है ऐसा यदि स्वीकार किया जावे तो तादात्म्यरोप प्रसग नही होगा क्योंकि तादात्म्यरोपमे

---

(८) अभाव दो प्रकारका है ससर्गाभाव (negation of correlation) और अन्यान्याभाव (negation of identity)। अभाव ज्ञानमे प्रतियोगिज्ञान हेतु होता है। प्रतियोगीका(जिसका अभाव है उसका) ससर्ग आरोप करके जो अभाव की बुद्धि होता है वह ससर्गाभाव है। यहापर यदि सयोगादि सबधसे यह वस्तु रहती तो उसकी उपलब्धि होती इस प्रकार ससर्गका आरोप करके जो अभावकी बुद्धि होती है यथा यहापरयहवस्तु नही है, वह ससर्गाभाव है। जहापर ससर्गविषस प्रतियोगी निषिद्ध होता है यहापर उस निषेधको ससर्गाभाव कहा जाता है। प्रतियोगीका तादात्म्य (तदात्मता, तद्गत असाधारण धर्म, जैसे घटमे घटत्व) आरोप करके जो अभावकी बुद्धि होता है (यथा यहवस्तु वह नहीं) वह अन्योन्याभाव या तादात्म्याभाव है। भूतल घट नही, यह अन्यान्याभाव का दृष्टात है, भूतलमे घट नही यह ससर्गाभाव है।

प्रतियोगी स्वतन्त्र उपस्थित नहीं है (किंतु तादात्म्यके विशेषण रूपसे)। स्वतंत्र उपस्थित जो रजत उसके आरोपकी सामग्री रहते हुए रजतका उपसर्जन जो रजतत्व उसकाही आरोप होता है ऐसा नियम नहीं किया जा सकता। रजतत्व और रजत इन दोनोंके आरोपमें प्रमाण नहीं है। भ्रमके पहिले नियमपूर्वक ' रजतत्व ' ऐसा स्मरण होता है ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। अतएव रजतत्वका आरोप शुक्तिमें न होनेसे रजतत्वका वैशिष्ट्य रजतमेंही विषय किया जाता है। सुतरां रजतत्वविशिष्ट रजतमेंही प्रवृत्ति होती है। तात्पर्य यह है कि भ्रमस्थलमें रजतार्थिकी प्रवृत्ति शुक्तिमें नहीं होती किंतु रजतमें होती है। रजतत्वरूपसे जिसको जाना उसीमेंही प्रवृत्ति होती है। रजतत्व शुक्तिमें जान नहीं सकता है क्योंकि वह (रजतत्व) स्वतन्त्ररूपसे उपस्थित नहीं हो सकता है क्योंकि वह गौण है अर्थात् वह रजत-उपस्थितिमें प्रकार (विशेषण) होता है। रजतत्व सदाही रजतके विशेषणरूपसे प्रतिभात होताहै। स्वतन्त्ररूपसे जो उपस्थित होता है वही आरोपित होता है। रजतत्व स्वतन्त्ररूपसे उपस्थित नहीं है। उसकी स्वतन्त्ररूपसे भ्रमके पहिले उपस्थिति होती है इस विषयमें प्रमाण नहीं है। अतएव प्रवृत्तिके उपपत्तिके लिये रजतका अभेदही शुक्तिमें जानना होगा। यह तभी हो सके यदि उसमें रजतकी उत्पत्ति हो।

पूर्वपक्ष—रजतज्ञान शुक्तिकोभी विषय करता है।

सिद्धान्त—अन्याकारज्ञान अन्यालम्बन होताहै यह ज्ञानविरूद्ध है।

इस प्रकारसे असत् वैशिष्ट्य की (शुक्तिमे देशान्तरीय रजतत्वका वैशिष्ट्य असत् है) अपरोक्ष प्रतीति अनुपपन्न है। इस स्थलमे अपरोक्ष ज्ञानका जो विषय है वह देशान्तरमे रहता है इस विषयमे कोई प्रमाणभी नही है । दोषवशसे देशान्तर-स्थित व्यक्तिही प्रतिभात होती है ऐसा कहना संगत नही है । दोष जैसा भ्रम उत्पादन करता है वैसे ही उसका विषयकीभी उत्पादन करेगा । इस स्थलमे वस्तुसाधक प्रतीति विद्यमान है ।

(३) बाध-बोध और प्रवृत्ति के विचारद्वारा अन्यथाख्याति खण्डित होनेके पश्चात् अब बाधके विचारद्वाराभी उसको खण्डित करते है । शुक्तित्व-विशेष दर्शनानंतर " यह रजत नही " ऐसी अन्योन्याभावबुद्धि होती है।वैधर्म्यज्ञानसेही अन्योन्याभावबुद्धि उदित होती है । अभेदका निषेधही अन्योन्याभाव पदवाच्य है। ' यह रजत नही ' ऐसा निषेधज्ञान द्वारा जाना जाता कि इस निषेधके पहिले उस शुक्तिदेशमे रजतका आरोप हुआथा । यदि रजतत्वका संसर्ग आरोपित होता तो शुक्तिके ज्ञानानंतर ऐसा बोध होता कि इसस्थलमे रजतत्व नही है। ऐसा बोध होता नही, किंतु एतादृश ज्ञान होता है कि यह रजत नही है । इससे जाना जाता है कि शुक्तिदेशमे रजतत्वका भ्रम नही होता किन्तु रजतका भ्रम होता है । यदि भ्रमकालमे इदं पदार्थमे रजतका तादात्म्य प्रतिभान न होता तो " नेदं रजतं " यह बाध निर्विषय होगा। रजत आरोपित नही होता किन्तु रजताभेद आरोपित होता है ऐसा वचनभी संगत नही है । रजत आरोपित न होकर रजताभेद आरोपित होनेसे भ्रमकालमे एसी बुद्धि उदित होगी कि सन्मुख

देशमे रजताभेद प्रतिभात हो रहा है। एतादृश बुद्धि नही होती किंतु ' यह रजत ' ऐसा ज्ञान होता है। इससे अवगत होता है कि शुक्तिदेशमे रजताभेद का नही किंतु रजतकाही आरोप हुआथा। बाध द्वाराभी यहा जाना जाता है। यदि रजताभेद आरोपित होता तो एतादृश बाधबुद्धि होती कि रजताभेद सन्मुख शुक्तिदेशमे विद्यमान नही है। अतएव सिद्ध हुआ कि शुक्तिदेशमे रजतत्व या रजताभेदका नही किंतु रजतका भ्रम होता है। औरभी रजताभेदका अर्थ रजतभेदका अभाव अर्थात् रजत है। अतएव रजतही आरोपित होता है, यह कहना होगा, रजतका ससर्गमात्र आरोपित नही होता। ऐसा होनेसे ऐसा बाध होता कि इसस्थलमे रजत नही परतु यह रजत नही ऐसा बाध होता है। किंच पूर्वपक्षके मतानुसर विषयका अन्यत्र अस्तित्व रहनेसे उसका बाध उपपन्न नही है। उक्त विषयका वैशिष्ट्यही (शुक्तिमे रजतका वशिष्ट्य) बाधप्राप्त होता है ऐसा कहा नही जा सकता क्योंकि रजत देशान्तरस्थ होनेसे उक्त वैशिष्ट्य असत् है। असत् होनेसे उसका बाध सभव नही है। औरभी 'नेद' ऐसे बाधसे इसस्थलमे अस्तित्वमात्र प्रतीत होता है, अन्यत्र सत्व अनुभूत नही होता। विप्रकृष्ट रजतका पुरोवस्थितरूपसे ग्रहण स्वीकार करनेसे बाधकालमे " वहापर रजत है, इसस्थलमे नही " एतादृश आकार होना उचित है। किन्तु ऐसा अनुभव नही होता। अतएव अनुभवके अनुसार स्वीकार करना होगा कि देशान्तरस्थ रजतकी प्रतीति नही होती।

उल्लिखित विचारद्वारा सिद्ध हुआ कि अन्यथाख्याति समी

चीन नहीं हे। अन्यरूपसे अन्यका प्रतिभासन युक्त नहीं है, अन्यथा अतिप्रसग होगा, सर्व ज्ञानही सर्व विषयक हो जायगा। उससे प्रति नियतार्थ व्यवस्थाका उच्छेद होगा। "यत्र ख्याति न तत्ख्याति यत्ख्याति न तदन्यथा"। (९)

ञ—अनिर्वचनीयख्याति मण्डन

शुक्तिरजतस्थलमे रजतका असत्व, उसका अधिष्ठानमे सत्व, तथा उसका देशान्तरमे सत्व, उपपन्न नहीं हुआ अतएव शुक्तिकामे उक्त रजत उत्पन्न होता है ऐसा स्वीकार करना होगा। विषय उत्पन्न होनेसेहि उक्त रजतादिविशिष्ट प्रतीति सूपपन्न होती है, अन्यथा नहीं। अर्थगत वैशिष्ट्य न रहनसे बुद्धिगत वैशिष्ट्य नहीं होता। असत्का अनवभासन (अविषयत्व) होनेसे, आन्तर रजत निराकृत होनेसे, बाधके अनुपपत्तिसे, पुरोवस्थित बाह्य पारमार्थिक (व्यावहारिक) रजतका विषयत्व अयुक्त होनेसे, देशान्तरीय रजत व्यवहित होनेके कारण उसका विषयत्व सभव न होनेसे, इनसब हेतुबलसे परिशेषतः तत्कालोत्पन्न प्रतिभासिक

(९) (a) Whenever a penny looks to me elliptic al if, in fact nothing elliptical is before my mind, it is very hard to understand why the penny should seem elliptical rather than of any other shape

(Broad s "Scientific Thought)

(b) The stick which is really straight really presents the appearance of being bent, it does not merely appear to appear bent, it really appears so
(Stout's "Error')

रजतही विषय होता है यह मानना होगा। निर्विषयज्ञान उत्पन्न होता नही "निराकारत्वापत्ते"। भ्रमज्ञान सालम्बन होता अन्यथा भ्रमोदयकी अनन्तर पुरोस्थित विषयके प्रति धावन या वहासे पलायन उपपन्न नही हे। जो वस्तु सन्निकृष्ट होकर जिस रूपसे जिसज्ञानद्वारा विषयीकृत होती है वह उसको वैसाही स्वीकार करना उचित है। प्रतीति निर्वाहानुरोधसे स्वीकृत पदार्थ उस प्रतीतिके पहिले सत् नही हो सकता है। प्रतीति समय लीन होनेसे उसको प्रातिभासिक या प्रातीतिक कहते है। "प्रातीतिक' शब्दसे प्रतीति जन्यत्व अथ नही किंतु प्रातीतिकाल व्यतिरिक्त अन्यकालमे असत्व ज्ञापित होता। 'इद रजत' एसे प्रत्ययानुरोधसे बाधज्ञान निरसन-योग्य प्रतिभासमानकालीन मिथ्या रजत अगीकार करना होगा। ज्ञान प्रवृत्तिहेतु होता है। शुक्ति रजतस्थलमे रजतार्थिकी पुरोवर्ती प्रवृत्तिकी अन्यथा उपपत्ति न होनेसे पुरोवति विशिष्ट रजतज्ञान स्वीकार्य है।वह पुरोवर्तिमे मिथ्या रजत विना अनुपपन्न हे। साक्षात्व अनुरोधसे और प्रवृत्ति अनुरोधस अपरोक्षस्थलमे अर्थकी उत्पत्ति स्वीकार्य है।

रजतभ्रान्ति निवृत्त होनेसे सब लोगोंकोंहि इस प्रकार अनुभव होता हे कि यथार्थ ज्ञान होनेके पहिले मिथ्या रजतही प्रतीत हुआथा। इस प्रकारसे सबनेही रजत और रजतज्ञानके मिथ्या त्वको मानस प्रत्यक्षका विषय किया हे। ज्ञान दोपजन्य होनेसे और मिथ्या ज्ञान की प्रसिद्धि होनेसे मिथ्या रजतही आलम्बन होता है, सत्य नही। बाध होनेसेभी वह सत्यरूप्य विलक्षण है। 'नेद रजत' ऐसा बाधज्ञान प्रतिपन्नोपाधिमे (शुक्तिरूपअधि

ध्यानमे) रजतके अभाव--प्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्वको विषय करता है। ऐसा अभावज्ञान होनेसे उक्त रजत निवर्तित होता है। अभाव-विशिष्ट ज्ञानके निवर्तकत्वस्थलमे निवर्त्यका मिथ्यात्वही प्रयोजक होता है, अन्यथा तत्कालमे तदभावविशिष्ट प्रमा असंभव है। अतएव रूप्यके ख्याति और बाधसे अवगत होता है कि जो सत्य नहीं वह भी प्रतीत होता है। असत्-विलक्षण होनेसे प्रतीत होता है और सद्विलक्षण होनेसे बाध होता है। सत् यदि प्रतिभात होगा तो कैसे बाध हो सकता है ? और यदि प्रतिभात होगा तो कैसे असत् होगा ? अतएव वह रजत अनिर्वचनीय या मिथ्या है। रजतका सत्व या असत्व, आन्तरत्व देशान्तरीत्व निराकृत होनेसे उसका मिथ्यात्व स्वीकार्य है। सुतरां सिद्ध हुआ कि शुक्तिरजत निर्दोष व्यक्ति कर्तृक अगृहीत होनेसे तथा " इस स्थलमे रजत नही " ऐसे बाधसे तथा " मिथ्या रजत प्रतिभात हुआथा" ऐसे परामर्शसे, रजतका मिथ्यात्व स्वीकार्य है। यह जो मिथ्यात्व है वह रजतज्ञान द्वारा प्रकाशित नहीं होता किंतु परवर्ति बाधज्ञान और अनुपपत्तिज्ञान (यहां पर रजत रह नही सकता ऐसी ज्ञान) द्वारा साधित होता है (१०)

---

(१०) तस्मात् इद रजत इति प्रत्ययानुरोधात् बाधकज्ञाननिरसनयोग्य प्रतिभासमानकालीनं मिथ्यारजत अगीकर्तव्य बाधकप्रत्ययानुरोधाच्च नैकालिकरजताभावः तथाचानुभव नास्त्यत्र रजत मिथ्यैव रजत अभात् इति ।

(बांधेन्द्र सयमीकृत अद्वैतभूषण=पञ्चपादिकाविवरण-सग्रह—अमुद्रित)

(ख) नास्त्यत्र रजतं इति कालत्रयेऽपि रजतस्यासत्वमेव गम्यते, मिथ्येन रजतमभात् इति भ्रान्तिसमये रजतस्य विद्यमानतावसीयते

शुक्तिरजत जैसा मिथ्या है वैसाहि उसका संबंधभी मिथ्या है। 'यह रजत है' ऐसा भान होनेसे प्रतिभासानुरूप मिथ्यारजत और उसका तादात्म्य पुरोवर्ति अधिष्ठानमे मानना होगा। शुक्तिज्ञानके उत्तरकालमे 'नेद रजतं' ऐसे बाधका बाध्य इदंपदार्थगत रजततादात्म्य होता है। भ्रमकालमे इद पदार्थमे रजतका तादात्म्य भान न होनेसे बाध निर्विषय होगा। पश्चान्तरमे केवल रजतत्वका समवायही शुक्तिमे प्रतिभात होता है ऐसा कहनेसे 'नात्ररजतत्वं' ऐसा बाध होना उचित है। सुतरा शुक्तिमे रजतका तादात्म्यही भासमान होता है। इस शुक्तिका तादात्म्य उभयसापेक्ष है, अन्यत्र प्रसिद्ध नही। इस रीतीसे अनिर्वचनीय तादात्म्य की उत्पत्ति आवश्यक है (११)। इदं और रजत इन दोके ससर्गरूपसे प्रतीयमान जो तादात्म्य

उभयसंविदनुरोधात् कालत्रयनिषधस्य परमार्थरजतविषयत्व शुक्तिअज्ञान विवर्त पुरोवर्ति रजतविषयत्वच भ्रान्तिकालीन रजतविद्यमानतानुभवस्य कल्पनीय

(चित्सुखाचार्य विरचित विवरणभावद्योतनिका—अमुद्रित)

(ग) व्यवहारिक रजताभाव एव नेदं रजत इत्युल्लिख्यते नच पारमार्थिकस्याप्रसक्तिर्दोष. तस्यभ्रमाविषयत्वेऽपि अधिष्ठानसाक्षात्कारानन्तर स्मृत्युपस्थितस्य निषेधोपपत्त प्रतियोगिज्ञानाधिकरणादभानबुद्धेः। तत्स्मारक चाधिष्ठानज्ञानमेव।

(मधुसुदन सरस्वती प्रणीत अद्वैतरत्नरक्षणं)

(११) वेदान्तिमते रजततत्संसर्गयो: मिथ्यात्वात्, अन्यथाख्यातौच संसर्गस्यासत्वात् रजतस्य देशान्तरस्थत्वात् सम्प्रयोगानुपपत्ति.।

(आनन्दपूर्ण विद्यासागरकृत टीकारत्न=विवरण व्याख्या अमुद्रित)

उसकी सद्रूपता हो नही सकती क्योंकि शुक्ति रजतरूप नही है। इसस्थलमे प्रतीयमान जो रजत उसका तादात्म्य अर्थात् उभय निरूपितत्वरूपसे प्रतीयमान तादात्म्य अन्यत्र हे इस विषयमे प्रमाण नहीं है। यदि अपूर्व समवायत्वादि अथवा रजतके धर्म रजतत्वादि इन उभयकी उत्पत्ति अंगकिार करोगे तो सर्वानुभूत समवायत्वादि धर्म विशिष्ट संबंधसे रजतत्वादि विशेषण विशिष्ट वस्तुके इच्छावानके तथा पूर्वानुभूत रजतत्व विशिष्ट इच्छावान पुरुषके भ्रमस्थलमे प्रवृत्ति नही होगी (१२) यदि उभयका (पूर्वानुभूत समवायत्व और रजतत्व तथा एतद्कालानुभूत समवायत्व और रजतत्वका)ऐक्य मानोगे तो अनिर्वचनीयता सिद्ध होगी। अतएव शुक्तिरजतका मिथ्या तादात्म्य(आध्यासिक तादात्म्य संबध)स्वीकार्य है। उक्त दृष्टात अनुसार सकल भ्रान्ति स्थल विदित होना। (१३)

---

(१२) अपूर्वस्य समवायत्वादे रजतत्वादर्वा धर्मास्योत्पत्यगीकार पूर्वानुभूत समवायत्वादि विशिष्ट सबधेन रजतत्वादि विशेषणविशिष्ट पूर्वानुभूत राजतत्वादि विशिष्टमवेच्छता भ्रमस्थले प्रवृत्त्यनुपपत्त।

(अनिर्वचनीयवादार्थ अमुद्रित)

(१३) कादाचित्क शुक्तिरजतादि भ्रान्तिदृश्यका और तत्समकालमे उत्पन्न भ्रान्तिज्ञानका उपादानकारण (परिणामि और विवर्तोपादान) का विचार ग्रंथविस्तारभयसे कीया नही।

यस्मात् भ्रान्तित्व यवहार. सदसद्ज्ञानयोरनुपपन्ना, यतश्चपक्षान्तरु अनुभवविरोध यतश्च ज्ञानद्वय पाराक्ष्य स्मृतित्व स्मरणाभिमानप्रमाप. तद् हतुरविवेर तन्निमित्तप्रवृत्तयो· जन्मान्तरानुभूतस्मृतिश्च इति अप्रतिपन्नमपूर्व बहुकल्पनीय अख्यातौ ; अन्यथाख्यातौच अन्यत्र प्रतिपन्नस्य अन्यत्र सत्व दोषस्य च तथाविधा इंद्रियस्यच जन्मान्तरानुभूतदेशकालव्यवाहितार्थग्राहित्व,

न–मिथ्या पदार्थका परिचयः—

उल्लिखित विचारद्वारा मिथ्या पदार्थका परिचय पाया गया। औरभी इस विषयमें वक्तव्य है। इस स्पष्टीकरणद्वारा परवर्ति अध्यायका विचार्य विषय सुबोध होगा। शुक्तिरजतादि भ्रान्ति दृश्यको मिथ्या कहनेसे हेतु यह है कि, वह स्वतन्त्र अस्तित्ववान नहीं है, किंतु परतन्त्र है। उनका अस्तित्व यदि स्वतन्त्र हो तो वो सत्य होगा मिथ्या नहीं होगा। परतन्त्रका अर्थ जो अपर सत्तासे सत्तावान है। अपर सत्तासे सत्तावान न होनेसे उसका परतंत्ररूपसे निर्देश नहीं किया जा सकता। उस परतन्त्र पदार्थका अस्तित्व यदि उस अपरसत्ताके सम हो तो वह परतन्त्र नहीं होगा। वह भी उस अपरके समान हो जायगा। ऐसा होनेसे स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्य का भेद नहीं रहेगा। अतएव वोही परतन्त्र होता है जो अधिष्ठानके सत्तासे विषम सत्तावान् होता है। अतएव परतन्त्रका लक्षण यही है कि जो असत् नहीं किंतु सत् है, यह सत्ता स्वतःसिद्धिरूप नहीं है किन्तु अपर सत्तासे सत्तावान अथच उस अपर सत्ताके समसत्ताक नहीं किन्तु विषम सत्ताक है। शुक्तिरजतादि भ्रान्तिदृश्य परतन्त्र है क्योंकि वे असत् नहीं (शुक्तिआदि अधिष्ठानमें अपरोक्षरूपसे भासमान्

दृष्टसामर्थ्य, संसर्गस्य च रूप्यस्य प्रमाणता इति प्रमाणविरुद्ध नहि कल्पनीय अत सर्वदोषपरिहाराय यथाप्रतिपन्नस्य मिथ्यात्व नामैक स्वभावो "नास्ति रजत मिथ्यैव रजतमभात" इत्यनुभवसिद्ध समाश्रयनायो, अविद्योपादान कल्पनायाश्च अन्यथानुपपत्तिरकसिद्धत्वात्। सत्यस्य वस्तुना मिथ्यावस्तुसंभेदावभासमानो मायामिथ्याऽनिर्वचनीयख्यातिरध्यास एवायम्

(पञ्चपादिका विवरण)

रजतादिका स्वरूपतः असत्व नही हो सकता) (१४) वे स्वतः सिद्धभी नही (ये शुक्त्यादि अधिष्ठानके सत्तासे सत्तावान होता है) अथच अधिष्ठानके समान उनकी सत्ता नही है। अतएव वे अधिष्ठानके विषमसत्ताक होते है। प्रतीतिमात्रस्वरूप भ्रान्तिदृश्य व्यवहारकालमे बाधित होनेसे व्यावहारिक नही किन्तु प्रातिभासिक है। भ्रान्तिकी सत्ता और अपर जाग्रत पदार्थ की सत्ता यदि पृथक (सर्वथा स्वतंत्र नही) न होती तो भ्रान्तिही अप्रसिद्ध होती और उसका उच्छेद भी न होता। ज्ञानके पहिले व्यावहारिक पदार्थ अज्ञात रहता है। भ्रान्तिदृश्य अज्ञात नही रहता, वह प्रतीतिकालमेही अवस्थित होता है। प्रातिभासिक पदार्थके पहिले अधिष्ठानकी सत्ता विद्यमान है। प्रतिभासकालमे और प्रातिभासिक पदार्थके निवृत्ति-कालमेभी उस अधिष्ठान की सत्ता रहती है। प्रमा और भ्रमात्मक ज्ञानका विषय भिन्न होता है। व्यावहारिक पदार्थ (यथार्थ ज्ञानका विषय) द्वारा अनुगत होकर प्रातिभासिक पदार्थ की प्रतीति होती है ; यथा इदमंश (व्यावहारिक) द्वारा अनुगत होकर प्रातिभासिक रजतादिकी इदं रजतं एतादृश प्रतीती होती है, उन रजतादिका पृथक स्वतंत्र अस्तित्व नही रहता। पहिले अनिर्वचनीय ख्यातिस्थलमे अनिर्वचनीय पदार्थके उत्पत्ति प्रतिपादन द्वारा यह विषय निर्णीत हुआ है।

(१४) जो असत् अर्थात् जो यो कोइ धर्मीमे सत्वप्रकारक प्रतीतिका विषय नहीं होता वह अपरोक्षरूपसे प्रतीत नही होता अथात् प्रत्यक्ष प्रतीतिका विषय नही होता। इसस्थलमे प्रत्यक्ष प्रतीतिका अविषय आपाद्य है और सत्वप्रकारक प्रतीतिका अविषय आपादक है।

जो जहापर अनारोपित है वह उसका समसताक होता है। उक्त स्थलमे सत्ता जब सम नहीं है ओर उसको संज्ञा देना हो तो कहा जा सकता है कि एककी सत्ता अधिक है और अपरकी न्यून है। अतएव प्राप्त हुआ कि अधिष्ठानका विषमसत्ताक अवभासही होना यही परतन्त्रका परिचय है और यही मिथ्यात्वका लक्षण है। (१५) ऐसे परतंत्र अवभासकोही अद्वैत वेदान्त शास्त्रमे मिथ्या कहते हैं। यदि अधिष्ठान सत्ता न रहे तो अध्यस्त प्रतिभासको स्वत सत्तावान या असत् कहना होगा। स्वत सत्तावान होनेसे उसकी सत्यत्वापत्ति होगी और वह मिथ्या नही होगा। वह असत्भी नहीं है। असत् होनेसे उक्त प्रतिभासही सभव होना अशक्य था। (१६) असत् होनेसे पृथकत्व धर्मका अनाश्रय होनेके कारण उसको मिथ्यारूपमे अभिहित नहीं किया जा सकता। मिथ्या वस्तुकाभी सत्यसे पृथकत्व धर्मका योग होनेसे अतुच्छरूप सत्यत्व प्रसक्त होगा। अतएव जो पदार्थ मिथ्या होता है वह असत् या स्वतःसिद्ध नहीं है। उसकी कोई प्रकार सता

---

(१५) आधिष्ठाने अपरोक्षतया भासमानस्य स्वरूपतोऽसत्वाय गात् अधिष्ठानस्य यादृश सत्व तादृश सत्त्वराहित्य प्रतिपादित आधिष्ठानाविषमसत्ताकावभासत्व लक्षण पर्यवस्यति। लक्षण सत्ताशब्दन तारत्वादिवत् उत्कर्षनिरूपामक। कचनाखण्डापाधिभूता विवक्षिता (ब्रह्मविद्याभरण = ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य याख्या)

(16) (a) They must exist in order to be false.
(Bosanquet's "Essentials of Logic")

(b) To hold that appearances have no reality is to deny that they are appearances
(Eaton's "Symbolism and Truth")

रहना आवश्यक है। उसकी सत्ता यदि अधिष्ठान-सत्तासे स्वतत्र पृथक् हो तो उसका कभीभी बाध नहीं होगा, वह अधिष्ठान का प्रतिभासरूप है ऐसाभी निश्चय नहीं होगा, उसको मिथ्या-रूपसे भी अभिहित कर नहीं सकते। उसकी सत्ता यदि अधिष्ठान रूपही हो तो वह मिथ्या पदवाच्य नहीं होगा। सत्य अभिन्न मिथ्या नहीं हो सकता। मिथ्या यदि सत्य--अभिन्न हो तो तदभिन्न सत्यकी भी मृषात्व प्राप्ति होगी। वह यदि अधिष्ठानरूप हो तो भ्रान्तिप्रतिभास असत् होगा। उसकी सत्ता यदि अधिष्ठानके समसत्ताक हो तो उसको मिथ्या नहीं कहा ज यगा, उसका अधिष्ठानही (यद्‌गत प्रतिभासस्य तदधिष्ठान) अप्रसिद्ध होगा, जगतमे भ्रम और बाधकी व्यवस्था नहीं रहेगी। अतएव सिद्ध हुआ कि वही मिथ्या होता है जो स्वत सिद्ध या असत् नहीं, जिसका अस्तित्व अधिष्ठानसत्तासे स्वरूपत पृथक न होनेसेभी मानो पृथकरूपसे (न्यून सत्ताक रूपसे) प्रतिभात होता है। वह यदि सत्य (अधिष्ठानसे) पृथक् हो तो वह सत्यही हो जायगा अन्यथा तात्विक भेदका आश्रय नहीं होगा, पृथक होनेसे उन्होका तादात्म्यभी उपपन्न नहीं होगा। अतएव अधिकसत्ताक अधिष्ठानमे (अर्थात् उससत्तासे सत्तावान होकर) न्यूनसत्ताक प्रतिभास ही मिथ्या होता है। इसीको अध्यास कहा जाता है। अधिष्ठानमे अध्यस्त पदार्थ स्वरूपत नहीं रहता अतएव अधिष्ठान उसका अत्यताभाव-युक्त होता है। अधिष्ठान और अध्यस्त की समसत्ताक नहीं होती किंतु विषम सत्ताही स्वभाव होता है।

अधिष्ठानका असमानसत्ताक प्रतिभासही (मिथ्या पदार्थही) अधिष्ठानसे भिन्नरूपसे या अभिन्नरूपसे या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नही है। ऐसा मिथ्या पदार्थ सत् या असत् या सदसत् नही होता। वह सद्विलक्षण, असद्विलक्षण, सदसदुभयविलक्षण होताहै।

पूर्वपक्षी—एकका सदसदात्मकत्व जैसा विरूद्ध है वैसा सद्विलक्षणत्व भी विरूद्ध है।

सिद्धांत—सद्विलक्षणत्व और असाद्विलक्षणत्व यह जो दो धर्म है वो विरूद्ध होनेसे भी इनका मिथ्या तादात्म्य उपपन्न होता है। तात्पर्य यह है कि सद्विलक्षणत्व और असाद्विलक्षणत्व यह जो दो पदार्थ है इनका मिथ्या तादात्म्य मान्य होनेसे एकका सदसाद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्व हो सकेगा। सद सद्वादीके मतमे उक्त उभय पदार्थ वास्तव होनेसे उनका तादात्म्य सत्य होगा। अतएव विरोध होगा।

पूर्वपक्ष—(सदसद्वादी) मै भी सत् और असत्का मृषा तादात्म्य स्वीकार करूंगा।

सिद्धांत—मृषा शब्दका अर्थही ' अनिर्वचनीय ' है। अतएव सदसद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्व सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि यदि तुम मृषा मानोगे तो मृषा तादात्म्यही सत् या असत् न होनेसे सदसद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्व सिद्ध हो जायगा।

सदसद्विलक्षणत्व केवल सत् या केवल असत् या सदसद्रूपसे अनिर्वचनीय होता है। यह जो उभय वैलक्षण्य है वह तात्त्विक नही है। तात्त्विक होनेसे विरोध होगा। यह जो कहा गया

'विलक्षण' इसका तात्पर्य यह नही कि उस पदार्थका 'वैलक्षण्य' पारमार्थिक धर्म है। परतु वो धर्म युक्तिसिद्ध है यह प्रगट करनेके लिये ऐसा कहा गया है। आरोपणीय पदार्थ स्वरुपतःही अतात्त्विक होनेसे उसका कोई तात्त्विक धर्म (सदसद्विलक्षणत्वादि) नही हो सकता। (१७)

(१७) आरोप्यस्य रूप्यादे.सदसदात्मकत्वे न भ्रान्तिबाधौ स्याता, द्वयोरपि यथार्थत्वात् ।.. सत्त्वानधिकरणत्वे सति असत्त्वानधिकरणत्वे सति सदसत्वानधिकरण अनिर्वाच्यत्व-इति निर्वचन पर्यवस्यति ।... न तु सत्त्वादिवैलक्षण्यस्य तात्त्विकत्व अभिप्रयते, अतात्त्विकस्य तात्त्विकधर्मवत्त्वासम्भवात् ।

(आनन्दज्ञानविरचित तर्कसग्रह)

पंचम अध्याय
सिद्धान्त निरूपण

(क) केवलाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादनके प्रकार —

केवलाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपाद्य होनेसे यह प्रदर्शित होना आव-श्यक है कि द्वैत प्रपंच एकके अन्तर्गत है। तदनंतर द्वैतका मिथ्यात्व सिद्ध करना प्रयोजन है। पूर्वविचारानुसार ज्ञान और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य, ऐसा पदार्थ स्वीकृत होनेसेभी द्वैतसिद्धि या बहुत्वसिद्धि नहीं होती है, क्योंकि ज्ञेय पदार्थ ज्ञानके अधीन है। जो जिसके अधीन होता है वह पदार्थ जिसके अधीन है उस सत्ताका भेदक या परिच्छेदक नहीं होता। ज्ञेय पदार्थ, सत्ता और भान के लिये, ज्ञानके अधीन होनेसे तथा वह ज्ञान क्रिया-रूप न होनेके कारण उसका निराश्रयत्व सिद्ध होनेसे तथा उसकी सर्वानुस्यूतता प्रतिपादित होनेसे ज्ञानका अद्वैतत्व सिद्ध होता है।(१) अब ज्ञेयका मिथ्यात्व सिद्ध होनेसेही केवलाद्वैत सिद्धान्त प्रतिष्ठित होगा।

(ख) पदार्थ विभागः—

पदार्थ द्विविध है, ज्ञान और ज्ञेय। ऐसे विभागकी समीचीनता प्रतिपन्न है, क्योंकि उससे न्यून या अधिक, विचारमें नहीं आ सकता। उससे न्यून होनेसे जगत्की अप्रसिद्धि होगी। अधिकभी

(१) न हि ज्ञानं ज्ञानान्तरमविषयीकृत्य सत् स्वस्य भेदं विषयीकर्तुं शक्नोति, न वा ज्ञानं ज्ञानान्तरम् विषयीकर्तुं विषयस्य जडत्वापत्तेर्विषयीविषयिणोर्वस्तुतः सम्बन्धासम्भवाच्च। विषयाणां तस्य कल्पितत्वाच्च मिथ्यत्वज्ञानमिति न ज्ञानभेदसिद्धिरतश्चिद्रूपस्य प्रत्यक्चिद्रूपं मलता नित्यसिद्धेत्यायाय।

(सअवहारार्क मधुसूदन टीका)

नहीं है। अशेष पदार्थ उसीकेही अन्तर्गत है, एतदातिरिक्त नहीं हो सकता, अन्यथा तुच्छता होगी। ज्ञान स्वप्रकाश होनेसे किसीकाभी आश्रित नहीं है। अतएव ज्ञानही ज्ञेयसबधमे ज्ञातारूपसे उपचरित होता है। नित्य उपलब्धि मात्र ही उपलब्धा है, अन्य उपलब्धि, अन्यउपलब्धा, ऐसा नहीं है।

(ग)वेदान्त शास्त्रकी विचारप्रणालीः—

वेदान्तशास्त्रमे ज्ञानके दिकसे ज्ञेयका विचार किया जाता है क्योंकि ज्ञानही ज्ञेयका सिद्धिप्रद है, ज्ञेयपदार्थ स्वत सिद्ध ज्ञानके अधीन हे, उसके साथ तादात्म्य-प्राप्त है। जडपदार्थको ज्ञान-व्यतिरिक्त रूपसे विवेचन करनेसे उसको स्वतन्त्र कहना पड़ेगा। अथवा ज्ञान स्वस्वरूप परित्यागपूर्वक सर्वथा ज्ञेयरूपसे परिणत है ऐसा मानना होगा। परतु यह दोनो पक्ष असगत है। अतएव ज्ञानके दिकसे ज्ञेयका विचार करना होगा।

(घ) ज्ञेयप्रपंच मिथ्या है क्योंकि वह सद्भिन्न चिद्भिन्न हैः—

स्वत सिद्ध स्वप्रकाश ज्ञानके दिकसे ज्ञेयका विचार करनेसे ज्ञेयको सत् कह नहीं सकते क्योंकि सत्स्वरूप स्वत सिद्ध स्वप्रकाश है। इस सिद्धान्त अनुसारसे ज्ञेय प्रपच सत् हो नहीं सकता। सर्वत्र अनुगत सद्बुद्धि गोचर सद्व्यक्ति एक होनेसे विभक्त जडप्रपचका सद्रूपत्व अयुक्त हे। अतएव (प्रकारान्तरके अभावके कारण) बह असत् या मिथ्या होगा। वह असत् नहीं है। जो कहींपर सद्रूपसे प्रतीयमान नहीं होता वही असत् है। घटादि वा शुक्तिरुप्यादि सद्रूपसे प्रतीयमान होता इसलिये प्रतीयमानत्वका।

अभाव नही है । सुतरां असत् नही कहा जाता । सद्रूप अधि-ष्ठानमे तादात्म्यसंबंधसे आरोपही, आरोपित वस्तुका सद्रूपसे प्रतीतियोग्य होनेका कारण है । जो सद्वस्तुमे आरोपित नही, और इसलिये जो सत्त्वरूपसे प्रतीत होनेका अयोग्य वही असत् है, यथा शशशृंगादि । कुर्मरोम, वंध्यापुत्र, खपुष्प, इत्यादि असद्विषयक शब्दज्ञानानुपाति वस्तुशून्य विकल्पात्मक ज्ञान या ज्ञानाभास होनेसेभी वह ज्ञेयरुपसे अपरोक्ष गोचर नही होता है । विषय विना शब्दादिद्वारा शक्यादिभ्रम होनेसे ऐसा ज्ञानविशेष उत्पन्न होता है । केवल शब्दप्रयोग और विकल्पज्ञान अलीक पदार्थका होता है । अलीक पदार्थद्वारा कोई व्यवहार संभव नही है । अलीक पदार्थमे कारणता, कार्यता, नित्यता, अनित्यत्वादि कोईभी व्यवहार नही होता । अतएव ज्ञेय प्रपंचको असत् नही कहा जा सकता । असत्के साथ असत्का किंवा सत्के साथ असत्का ऐसा ज्ञातृज्ञेय-संबंध नही होता । संबंध द्व्याश्रय होनेसे और असत्का आश्रयत्व अयुक्त होनेसे असत्का संबंध सिद्ध नही होता । संबंध द्विनिष्ठ होनेसे उक्त संबंधिद्वय सत् होगा ऐसा भी नही कहा जा सकता क्योंकि सत् एकमात्र है । अवशेष ज्ञेयप्रपंचको मिथ्या कहना होगा क्योंकि वह सद्भिन्न है । प्रपंचका अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु सद्रूप न होनेसेभी सर्व प्रपंचानुगत एक ब्रह्मका सद्रूपताके द्वाराही प्रपंचान्तर्गत प्रत्येक वस्तुकी सत्प्रतीति और सद्रूपसे व्यवहार उपपन्न हो सकता । सुतरा प्रपंचका सद्रूपतामे बाधक है इसलिये प्रपंचको सद्रूप नही कहा जाता ।

(ङ) जगत् मिथ्या है क्योंकि वह सत्ता और भान के लिये सापेक्ष है:—

सत् स्वप्रकाशस्वरूप होनेसे सापेक्ष नही है, पर ज्ञेयप्रपंच

सापेक्ष है। ज्ञेय पदार्थ यदि सत् (सत्य) होगा तो वह सापेक्ष न होता। अथच सापेक्ष न होनेसे उसका ज्ञेयत्व ही अप्रसिद्ध होता है। अतएव सापेक्ष (सत्ता और भानके लिये सापेक्ष) हानेसे ज्ञेयप्रपंच सत् नही है। सत् निरपेक्षस्वरूप होनेसे सापेक्ष प्रपच मिथ्या होगा।

(च) जड प्रपंच मिथ्या है क्योंकि वह चेतनके साथ अयथार्थ तादात्म्य संबंधसे संबद्ध है.—

सर्व प्रपंचके धार्मिरूपसे सत्स्वरूप प्रतिपन्न होता है। सत् विशेष्यरूपसे प्रतिभात होता है, उसमे घटादिका तादात्म्य होता है। सच्चितादात्म्य-अभावसे दृश्यत्व अनुपपन्न है। विचारदृष्टिसे इस तादात्म्यको यथार्थ कहा जा नहीं सकता। सत् स्वप्रकाश ज्ञान-स्वरूप होनेसे, उसके साथ जडपदार्थका वास्तव तादात्म्य संभव नही है। जिस स्थलमे वास्तव तादात्म्य होता है वहापर आधार परिणाम प्राप्त होता है। 'उपयन्नपयन् धर्मो विकरोतिहि धार्मिणम्' प्रकृतस्थलमे साक्षिरूप सच्चित्स्वरूप अपरिणामी होनेसे उसके साथ ज्ञेयप्रपंचका वास्तव तादात्म्य संभव नही है। अवशेष स्वप्रकाश अपरिणामी चेतनकेसाथ जडप्रपचका आध्यासिक (अयथार्थ) तादात्म्य मानना होगा। ऐसा तादात्म्य भ्रान्तिस्थलमे प्रसिद्ध है। अनिर्वचनीय भ्रान्तिदृश्य और उसके अधिष्ठानका आध्यासिक तादात्म्य होता है। अध्यासिक तादात्म्यस्थलमे अधिष्ठान और अध्यस्त यह सबधि-द्वय उभयही स्वरूपतःमिथ्या, किंवा उभयही सत्य नहीहोता परंतु एक (अधिष्ठान) सत्त्व होता है, अपरमिथ्या होता है। प्रकृतस्थलमे जड और चेतनके पृथक सत्व-विषयमे प्रमाण न रहनेसे उनमेसे

अन्यतर कल्पित होगा। अन्यतर कल्पना विना कल्पित तादात्म्य या अध्यस्त-अधिष्ठान-भाव संभव नहीं है। चैतन्य यदि कल्पित हो, तो, जड होनेके कारण जगत्‌की अप्रसिद्धि हो जायगी। सर्वावधि स्वप्रकाशस्वरूप होनेसे सच्चित्स्वरूप मिथ्या नहीं है। व्यावृत्त सर्व वस्तुमे सत्त्वरूपसे सदा अनुवर्तमान होनेसे अधिष्ठान की परमार्थसत्यता प्रतिपन्न होती है। अवशेष जड प्रपंचको मिथ्या कहना होगा।

(छ) जगत् मिथ्या है क्योंकि वह अनिर्वचनीय है:—

घट सन् इसस्थलमे सत्ता और घट भासित होते है। सत्ता और घट एक पदार्थ नही है। घटोत्पत्तिके पहिले सत्स्वरूप रहता है। घटविनाशसे सत्ताका विनाश नही होता। अतएव घटकी व्यभिचारी होनेसे सत्ता घटका धर्म नही है। पटःसन् इत्यादिस्थलमे सत्द्वारा पट अनुविद्ध प्रतीत होता है। ऐसे स्थलमे घट विषय नही है। इससे घटका सद्विलक्षणत्व अवगत होता है। अनुभवसिद्ध होनेसे घट असत्‌भी नही है। अतएव घटका सदसद्विलक्षणत्वरुप अनिर्वचनीयत्व प्रतिपन्न होता है। यही मिथ्यात्व है। घट-दृष्टान्त अनुसार अपर स्थलभी विदित होना। व्यभिचारी पदार्थ मात्रही अनिर्वचनीय होता है। सत् या असत्‌का आगमापायित्व असंभव होनसे उसका अनिर्वचनीयत्व आवश्यक है।

(ज) अनिर्वचनीयतासंबंधमे प्रत्यक्षप्रमाण प्रदर्शन:—

अनिर्वचनीयत्व-विषयमे प्रमाण नही है ऐसा नही। यह रजत (शुक्तिरजत) 'सत्' ऐसा प्रत्यक्षही अनिर्वचनीयत्वमे प्रमाण है। इस स्थलमे रजतस्वरुपही सत् नही है। सत् शब्द रजतके

पर्यायरूपसे प्रसिद्ध नही है। प्रपंचमात्रमे अनुगत सद्बुद्धिका रजत-विषयत्व उपपन्न नहीं है। सत्ता उस रजतका धर्मभी नही है। चैतन्य अतिरिक्त सत्तारूप धर्म है इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं है। सत्ता-जाति सर्वत्र असिद्ध कही गई है। वह सद्बुद्धि त्रैकालिक अस्तित्वको बोधन करती है ऐसाभी नही है। शुक्तिरजतादिका बाध प्रत्यक्षसिद्ध है। अवशेष कहना होगा कि अधिष्ठान-सत्के साथ तादात्म्यप्राप्त होकर 'रजतसत्' इत्यादि सर्व प्रत्यय होते है। अतः सदन्य पदार्थ प्रत्यक्षसिद्ध है। प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसेही असत्सेभी अन्य है। अतएव पदार्थका सदसद्विलक्षणत्व प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध है।

इस स्थलमें यह प्रणिधानयोग्य है कि (१) सत्त्व और असत्त्व यदि परस्परविरहस्वरूप (सत्त्वका अभाव असत्त्व और असत्त्वका अभाव सत्त्व) किंवा (२) परस्परविरहव्यापकस्वरूप (परस्पर विरहका व्यापकता, सत्त्वाभावका व्यापक असत्त्व और असत्त्वाभावका व्यापक सत्त्व) हो तो सत् और असत् ऐसा विभागद्वय सिद्ध होगा, सदसद्विलक्षणरूप तृतीय विभाग नही सिद्ध होगा 'परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः'। तात्पर्य यह है कि, सत् और असत् व्यतिरिक्त कोईभी वस्तु संभावित नही है क्योंकि सत्त्व और असत्त्व धर्मद्वय परस्परविरहस्वरूप या परस्परविरहव्यापकस्वरूप है। परंतु अद्वैतवेदांतसिद्धांत ऐसा नहीं है, इस मतानुसार तृतीय विभाग सिद्ध होता है।

(१) इस मतमे "त्रिकालाबाध्यत्व" सत्त्व है, इसका अभाव असत्त्व नही है क्योंकि शुक्तिरुप्यादिस्थलमे सत्त्वका अभाव रहने

सेभी असत्त्व नही है। असत्ख्याति पहिले खडित किया। इसमतमे असत्त्व " क्वचिदपि उपाधौ सत्त्वेन प्रतीयमानत्वानाधिकरणत्व "। जो कोईस्थलमेभी सद्रुपसे प्रतीयमान नही होता वही असत् है यथा शशशृगआदि। अधिष्ठानसत्के साथ तादात्म्यरुपसे अप्रतीयमानत्वही असत्त्व है। व्यावहारिक प्रपच और प्रातिभासिक पदार्थ सन् नही क्योंकि एकमात्र अधिष्ठानचैतन्यही सत् है। उक्त पदार्थ सद्रुपसे प्रतीत होनेको अयोग्यभी नही सुतरा असत्भी नही है। अतएव सदसद्विलक्षणरुप तृतीय विभाग सिद्ध होता है।

(२) सत्त्वाभावका व्यापक असत्त्व नही है। जिस जिस स्थलमे सत्त्वाभाव है उस स्थलमे असत्त्व है, यह यदि नियमितरूपसे सिद्ध हो तो व्यापक हो सकता। किन्तु सो सिद्ध नही होता। शुक्तिरजतमे सत्त्वका अभाव रहनेसेभी असत्त्व नही है क्योंकि वह सद्रुपसे प्रतीतही होता है। तात्पर्य यह है कि, सत्त्वाभाववत् शुक्तिरजतमे यदि असत्त्व रहता तो सत्त्वाभावका व्यापकता असत्त्वधर्ममे लब्ध होता। किन्तु सो नही है। ऐसाही असत्त्वाभावका व्यापक सत्त्व नही। सिद्धातीकी अभिमत असत्त्वके अभावविशिष्ट जो शुक्तिरजत, उसमे सिद्धातीकी अभिमत सत्त्वधर्म नही है इसलिये असत्त्वाभावका व्यापक सत्त्वधर्म नही है। सुतरा असत्त्वाभाव सत्त्वका व्याप्य (अव्यभिचारी) न होकर व्यभिचारी होता है। इसलिये व्याप्ति न रहनेके कारण व्याप्तिका निरूपकतारूप व्यापकताभी नही है। अतएव सत्त्व और असत्त्व परस्परका अत्यन्ताभावके व्यापक न होनेसे " परस्परविरोधे हि न प्रकारातरस्थिति " यह रीति प्रयुक्त नही होती। इसलिये सत्

ओर असत् इस भागद्वयव्यतिरिक्त आरोपित शुक्तिरजतादि तथा व्यावहारिक; वियदादि वस्तु, प्रदर्शित सत् और असत्से विलक्षण (अनिर्वचनीय) है ।

(झ) जड और चेतनका परस्पर अध्यास निरूपण.—

घटःसन् पटःसन् इत्यादि प्रतीतिद्वारा घटादिका सत्यत्व कहा नही जा सकता क्योंकि ' सत् ' पदका अर्थ स्वप्रकाश है। घट·सन् इत्यादि प्रत्यक्ष अधिष्ठानसत्ताविषयक होनेसे दृश्यसत्यत्वमे प्रमाण नहीं है । उस प्रतीतिद्वारा स्वप्रकाशमे घटादि आरोपित या कल्पित (आध्यासिक तादात्म्य प्राप्त) है यह अवगत होता है । अन्य स्वरूपके अन्यत्र भानका हेतु अन्यके साथ तादात्म्य-अध्यास होता है । उस अध्यासका अधिष्ठान सच्चित्स्वरूप होता है । जिसद्वारा अनुविद्ध होकर आरोपित पदार्थ प्रतिभात होता है वह अधिष्ठान होता है । घटःसन् स्थलमे सत्ता और भेद भासित होता है । अस्तित्व और भेद एक पदार्थ नही है। अतएव उभय व्यवहारके एकजातीय प्रत्यक्षविषयद्वारा एकका अधिष्ठानत्व और अपरका आरोपत्व अवगत होता है । सत्-अवच्छेदमे घटादिका और घटत्वादिका तादात्म्य तथा घटत्वादिका संसर्ग और घटादि- अवच्छेदमे सत्का तादात्म्य, सत्तादि धर्मका संसर्ग प्रतिभात होता है । अतएव इनका परस्पर अध्यास विद्यमान है यह जाना जाता है । जैसे आरोप्यके अधिष्ठान-सामान्यके साथ तादात्म्यानुभव होता है वैसेही उसकाभी आरोप्यके साथ तादात्म्या-

नुभव है। यह ही इतरेतर अध्यासमे प्रमाण हे। एकतरका अध्यास अगीकार करनेसे अपरका स्फुरण नही हो सकता। अतएव परस्पराध्यास स्वीकार्य है। अथच सत्स्वरूप पूर्व सिद्ध होनेसे इतरेतराश्रय दोप नही है। सुतरा सिद्ध हुआ कि सच्चित्स्वरूपमे नामरूपका सबध और प्रपचमे सदादिभाव परस्पर अध्यास जनित होता है। इतरेतराध्यासरूप सिद्धातका तात्पर्य यह हे कि, अधिष्ठानके तादात्म्यसनधसे आरोप होता है, उभयही परस्पर अधीन ऐसा अर्थ नहीं है। ऐसा हो तो उभयकी परस्पराधीन सिद्धि होनेसे उभय ासिद्धि प्रसग होगा। अधिष्ठानमे अध्यस्त भेदवत्ता रहनेसेभी, अध्यस्तमे अधिष्ठान भेदका अभाव होता है। अतएव अन्यतर निरूपित तादात्म्य ग्रहणपूर्वक भी सामानाधिकरण्य प्रतीति उपपन्न होती है। यद्यपि चेतन और जडका परस्परमे परस्पर तादात्म्याध्यास समानही है तथापि चेतनका सश्लिष्टरूपसेहि अध्यास (आत्मतादात्म्य सबध मात्र अध्यास) होता हे, स्वरूपत नही, अन्यथा निरधिष्ठान भ्रमापत्ति होगी। अतएव चेतनका सत्यत्व होता है। जड पदार्थका खरूपत अध्यास होता है। अतएव उसका अनृतत्व होता है। सुतरां जड पदार्थ स्वरूपत कल्पित है, चेतन सश्लिष्ट रूपसे कल्पित है, शुद्धरूपसे कल्पित नहीं है। (२)

---

(२) (क) आत्मानात्मनाश्चिदचित्वेन वास्तवाभेदासिद्धौ सामानाधिकरण्यात् तदभेदधीरध्याससम्भावना गमयति।

(चितसुखाचार्यकृत ब्रह्मसूत्रभाष्य भावप्रकाशिका अमुद्रित)

(ख) मिथ्यात्व अध्यासविषयत्व अध्यासश्च तच्छून्य तदवभास तदसम्बाधिनि तद्प्रतीति।

(प्रपचमिथ्यात्वभूषण अमुद्रित)

(ञ) जगत् मिथ्या है क्योंकि वह चेतनरूप अधिष्ठानमे न्यूनसत्ताक प्रतिभास है:—

पूर्वोक्त लक्षणानुसारभी प्रपंचको मिथ्या कहना होगा । भ्रान्ति-दृश्यको जिस हेतुसे मिथ्या कहा जाता है वह निरूपण करते है । उसकी स्वतंत्र सत्ता नही है, वह जिस अधिष्ठानमे प्रतीत होता है उस अधिष्ठानके सत्तासे सत्तावान होकर प्रतिभात होता है । प्रति-भात होनेके लिये उसकाभी एक प्रकार अस्तित्व रहना आवश्यक है । अतएव जिसकी स्वतंत्र सत्ता नही है किन्तु अधिष्ठानसत्तासे सत्तावान होकर न्यून सत्तावानरूपसे प्रतिभात होता है वही मिथ्या होता है । यह व्यावहारिक विश्वप्रपंच स्वप्रकाश-स्वरूप नही है । अथच असत्भी नही है । एकमात्र स्वप्रकाश सत्स्वरूपके सत्तासे इसकी सत्ता है और असत् न होनेसे इसकी सत्ता उस अधिष्ठान सत्तासे विषम (न्यून) है क्योंकि केवल निरंश परिपूर्ण निर्विकार सत्तामे प्रपंचभाव संभव नही है । अतएव स्वतंत्र सत्तारहित व्यावहारिकप्रपंच सच्चित्स्वरूप अधिष्ठानसत्तासे सत्तावान अथच उस अधिष्ठानमे न्यून- सत्तावान-रुपसे प्रतिभात है । यही मिथ्यात्वका लक्षण है । भ्रान्तिदृश्य मिथ्या है, क्योंकि वह व्यावहारिक अधिष्ठानसत्तासे सत्तावान होकर न्यून-सत्ताक (प्रातीतिक या प्रातिभासिक) होता है । भ्रान्तिस्थलमे जैसे भ्रान्तिदृश्य तद्व्यतिरिक्त इदंरूपद्वारा अनुगत होकर प्रतिभात होता है वैसेही व्यावहारिक प्रपंचभी स्वव्यतिरिक्त सच्चित्स्वरूपद्वारा अनुगत होकर प्रतिभात है, वहभी (व्यावहारिक प्रपंचभी) पार-मार्थिक -चेतनके सत्तासे सत्तावान, उसकेही भानसे भासित

अथच न्यून-सत्ताक (व्यावहारिक) है (३) अतएव स्वप्रकाश सचित्स्वरुप पारमार्थिक अधिष्ठानमे व्यावहारिक सत्तावान जडप्रपंचका प्रतिभास मिथ्या है। घटादि वस्तु व्यावहारिकरुपसे रहनेसेभी पारमार्थिक रूपसे नही है सुतरां मिथ्या है। जिस संबंधसे यदवच्छेदसे जिस स्थानमे जो जिसरूपसे रहता है उस संबंधसे उस अवच्छेदसे उस स्थानमे पारमार्थिरूपसे उसका न रहनाही मिथ्यात्व है।

(८) अनिर्वचनीयता प्रतिपादन :—

ऐसा प्रतिभासही अनिर्वचनीय होता है जो अधिष्ठानसे भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नही है। वह सत् या असत् या सदसद्रूपसे निर्वचनार्ह नहीं होता। जडप्रपंच सत् या असत्रूपसे निर्वचनीय नही है, यह पहिलेही प्रदर्शित किया है। उभयरूपसेभी वह निर्वचनार्ह नहीं है। एकमे सत्त्वासत्त्वरूप विरुद्ध धर्म असंभव है। सत्वासत्व उभयरूप होनेकेलिये उसको

---

(३) यद्यपि वेदांतमतमे चेतनस्वरूपही सबका सत्व है अतएव सत्व-स्वरुपमे भेद नही है तथापि तत् तत् अविच्छिन्न चैतन्य तद् तद् सत्व होनेसे अवच्छेद-स्वरूपका वैषम्यसे तत् तत् सत्वभी विलक्षण होता है सुतरां सत्ववैचित्र्य अनुपपन्न नही है।

" प्रातीतिक व्यवहारिक पारमार्थिक सत्तानां पूर्वापूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरस्याधिक्य पल्लवाविद्यावच्छिन्नं चैतन्यआद्या मूलाविद्यावच्छिन्न द्वितीया शुद्धं तत् तृतीया। अथवा अज्ञानाविषयतावच्छेदकत्वं द्वितीया शुद्धचिदन्यत्वे सति तदभाव आद्या। "

(अद्वैतचद्रिका=अद्वैतसिद्धिव्याख्या-अमुद्रित)

वस्तुकास्वरूप या वस्तुका धर्म कहना होगा । परतु उभय पक्षही सगत नही है । यदि सत्वासत्व वस्तुधर्म हो तो असत्वदशामेभी सत्वका अनुवृत्ति प्रसंग होगा, क्योंकि असत्वके समान सत्वकाभी वस्तुधर्मत्व माना गया है । आश्रय व्यतिरेकसे धर्म अवस्थित नही होता । अतएव असत्वकालमे भी पदार्थका सद्भाव हो जायगा । औरभी, धर्म होनेसे वह असत्त्व नही हो सकता । और सत्व और असत्व यदि वस्तुका स्वरूप होता तो सर्वदा एक वस्तुमे उक्तद्वयका (सत्वासत्वका) प्रसग होता । परतु यह अनुभवविरुद्ध है । कोईभी पुरुप सत् और असत् इन दोनोको एकत्र अनुभव नही करता । काल और देश—भेदसे ऐसा अनुभव होनेसेभी वस्तुद्वैरुप्य नही होता । देशान्तरमे और कालान्तरमे असत् होनेसे स्वदेशमे और स्वकालमे असत् होता है ऐसा नही । यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है । औरभी यदि सत्वासत्व वस्तुस्वरूप होगा तो सर्वदा सत्वासत्व प्रसंगके समान भग्न घटद्वाराभी मधुधारणादि प्रसग होगा । अतएव एक धर्मीमे युगपद् सत्वासत्वादि विरुद्ध धर्मका समावेश सभव नही है । अतएव अखिल जडप्रपचमे सत्वासत्व उभयरूप अनुमित नही हो सकता । अतएव जडप्रपचको सत् या असत् या सदसद्रूपसे निर्धारण किया नही जा सकता । स्वरूपत दुर्निरूपका कोईभीरूप वास्तव संभव नही है । सत्व या असत्व या सत्वासत्वरूपसे विचार-असहत्वही मिथ्यात्व है । युक्तिविरुद्धत्व ज्ञापनद्वारा कोईरूपसे निर्वचनाभाव होनेसे सद्विलक्ष-

णत्व (मिथ्यात्व) ज्ञापित होता है । (४)

(ट) व्यवहारकालीन सत्यत्वमिथ्यात्वविभागः—

उल्लिखित विचारद्वारा भ्रान्तिके समान व्यावहारिक प्रपंचकाभी मिथ्यात्व प्रतिपादित हुआ है । मिथ्यात्व अविशेष होनेसेभी अवान्तर वैलक्षण्यवशात् अर्थक्रियासामर्थ्यविशेष उपपन्न होता है । मिथ्या भ्रान्तिद्वयसे व्यावहारिक पदार्थका वैषम्य स्वीकृत होनेसे सत्यत्वापात होगा ऐसा कहना उचित नहीं है । परमतमे (सर्व सत्यत्ववादीके मतमे) सर्व पदार्थोंका सत्व होनेसेभी जैसे सुखा दिका अज्ञातसत्वराहित्य (घटपटादिके समान स्वकीय सुख

(४) (क) दुर्निरूपत्वात् परमार्थसत्यत्वप्रयोजक चित्स्वभावविरहाच मायामयत्वं ।

(विद्यार्थी–ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्यव्याख्या अमुद्रित)

(ख) तस्मात् विश्वस्य मिथ्यात्वं अनात्मवादि हेतुभि भेदसर्वेग प्रत्यक्ष प्रसिध्यति ।

(विद्यासागररत्न न्यायचंद्रिका—अमुद्रित)

(a) The empirical inscrutableness of all natural things is a proof *a posteriori* of the ideality and merely phenomenal actuality of their empirical existence

(Schopenhauer s ' The world as Will and Idea' Vol II)

(b) If we are to speak of phenomenal truth it essential to remember that what is phenomenally true is not really true but really false

(Mc Taggart s The Nature of Existence Vol II)

दुःखादि पदार्थ अज्ञात अवस्थामें बर्तमान नही रहता) और अनन्य वेद्यत्व इत्यादि वैषम्य होता है तद्वत् मिथ्यात्व होनेसेभी अवान्तर भेद उपपन्न होता है। सर्वसत्यत्वमतमे जैसे स्वरूपविशेषके कारणही घटादिका चिरस्थायित्व और सुखदुःखादिका नियमपूर्वक आशुतर विनाशित्व होता है ऐसे मिथ्यात्ववादिके मतमेभी स्वरुप विशेषके कारणही किसीका चिरस्थायित्व और भ्रान्तिदृश्यका स्वप्रतिभासकालमेही विद्यमानत्व होता है। मिथ्यात्व अविशेष होने- सेभी व्यावहारिकत्व और प्रातीतिकत्वरूपसे अवान्तर विशेष रहनेसे प्रपंचका सर्वसंमत सत्यमिथ्यात्व विभाग संभव होता है। प्रातिभासिक अपेक्षा व्यावहारिक पदार्थकी विलक्षण सत्ता गृहीत होनेसे उसको आपेक्षिक बोधसे सत्य कहा जाता है। प्रातिभासिक पदार्थका अस्तित्व रहनेसेही व्यहारकालमे भ्रमप्रमाविभागका उच्छेद नही होता।

(ट) मिथ्यात्व अवगत होनेका उपाय।—

अनुमानद्वारा व्यावहारिक प्रपंचका मिथ्यात्व सिद्ध करना हो तो प्रकृत अनुमानके पहिले दृष्टान्तसिद्धिके लिये कहींपर (प्रातिभा- सिक शुक्तिरुप्यादिमे) मिथ्यात्व साधन करना होगा। सर्व दृश्यके मिथ्यात्व निश्चयके पहिलेहि प्रातिभासिक पदार्थका मिथ्यात्व निश्चित होनेसे तद्दृष्टान्तानुसारसे व्यावहारिक प्रपचका मिथ्यात्व अवगत होता है। यदि प्रातीतिक (मिथ्या) पदार्थका ज्ञान न होता तो व्यावहारिक (प्रसिद्ध सत्य) प्रपंचका मिथ्यात्व बोधगम्य नही होता। (५)

(५) (क) स्वप्नादौ यद् यद् दृश्य तत्तत् मिथ्या इति व्याप्तिं निश्चित्य विश्वगत दृश्यत्वेन व्याप्तिं स्मरति यद्यत्दृश्यं तत्तत् मिथ्येति तदैव मिथ्यात्वव्याप्य

(ढ) अद्वैतसिद्धिः—

इस प्रकारसे सद्वस्तु-अधिष्ठित द्वैतका मिथ्यात्व सिद्धिपूर्वक अद्वैतसिद्धि प्रदर्शित की। सिद्धांत निष्पन्न हुआ कि द्वैत अवास्तव; अद्वैत वास्तव है; उभय अवास्तव (शून्यवाद) या उभयवास्तव (द्वैताद्वैतवाद) नहीं है। कल्पित (न्यूनसत्ताक) द्वैतसाधकका वास्तव अद्वैतत्व अविरूद्ध है।

(ण) पूर्वपक्षिसम्मत अद्वैत प्रतिपादनकीरीतिः—

पूर्वपक्षी-अद्वैतसिद्धि उद्देशसे जडप्रपचका अनिर्वचनीयत्व (मिथ्यात्व) सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है। अद्वैत-सिद्धात निरूपण करनेके लिये ऐसा विचार प्रगट होना उचित है कि-

(१) ब्रह्मकी सत्ता और जगत्की सत्ता एकही है। जगत मिथ्या नहीहै।

(२) जो निर्गुण वही सगुण है। इस विषयमे निस्तरंग और सतरंग समुद्रका दृष्टांत है।

(३) अचिन्त्य शक्तियुक्त चेतन जगत्रूपसे परिणामप्राप्त होता है।

दृश्यत्ववद्विश्वमिति ज्ञान लिंगपरामर्शरूपमुत्पद्यत ततोविश्व मिथ्येति ज्ञानमनुमितिरूपमुत्पद्यते।

(वेदान्तानुमिति अमुद्रित)

(ख) तुलाज्ञानकल्पितभिन्नत्वे सति सत्वेन प्रतीत्यर्हं चिद्भिन्न मिथ्या दृश्यत्वात् जडत्वात् परिच्छिन्नत्वात् शुक्तिरूप्यवत्।

(वेदान्तार्थ निरूपण अमुद्रित)

(ग) मिथ्यात्वमपि मिथ्यैव दृश्यत्वाविशेषात्।

(वेदान्त सर्वस्वसमह अमुद्रित)

(त) पूर्वपक्ष खण्डन। जगत सत्य नहीं है :—

सिद्धान्ती-उक्तपक्ष विचारसह नहीं है यह क्रमशः कहा जाता है। (१) स्वप्रकाश अद्वैतचैतन्यरूपत्वही ब्रह्मनिष्ठ सत्ता है। वही यदि जडरूप जगन्निष्ठ सत्त्व हो तो शुक्तिमे आरोपित रजतस्थलमे रजतत्वकी विरोधिनी शुक्तिकी सत्तासे जैसे रजतका मिथ्यात्व उपपन्न होता है ऐसेही जडविरोधी स्वप्रकाश सत्तामे जगन्निष्ठ स्वरुपतः मिथ्यात्व उपपन्न होगा। तात्पर्य यह है कि वस्तुगत्या स्वप्रकाश अद्वितीय अबाध्यत्व-उपलक्षित (अबाध्यत्व रूप धर्म जिसमे प्रविष्ट नहीं ऐसा) जो शुद्ध चिद्रूप है वही शुद्ध चिद्रूपही सद्रूप ब्रह्मनिष्ठ धर्मरूपसे कल्पित होकर सत्त्वरूपसे कथित होता है अर्थात् ब्रह्मकी सत्ता इसप्रकारसे अभिहित होती है। वह चिद्रूपही यदि जगत्का सत्त्व हो तो वह चिद्रूप, जडसे अत्यन्त भिन्न होनेसे उसमे जडधर्मता हो नहीं सकेगी क्योंकि अत्यन्त भिन्न पदार्थका धर्मधार्मिभाव होता नही है। अतएव जडसे अत्यन्त भिन्न होनेके कारण, जडत्व-विरोधी होनेसेभी वह सत्त्व, (कल्पित भेदमूलक ब्रह्मनिष्ठसत्त्व) जडके साथ कल्पित तादात्म्यसे जडका धर्म होता है ऐसा स्वीकार करना होगा, जैसे शुक्तिके कल्पित तादात्म्ययुक्त रजतमे शुक्ति-निष्ठ धर्मकी प्रतीति होती है। सुतराम् यही प्रतिपन्न हुआकि ब्रह्मसे अत्यन्त अभिन्न होनेसेभी वह स्वरूप (सत्त्वस्वरूप) जैसा कल्पित ब्रह्मभेदमे ब्रह्मका धर्म होता है ऐसा जडसे अत्यन्त भिन्न होनेसेभी वह स्वरूप जडके साथ कल्पित तादात्म्य प्राप्त होनेसे जडका धर्म होता है। तात्पर्य यह है कि धर्मधार्मिभाव अत्यन्त भेदस्थलमे या अत्यन्त अभेदस्थलमे नही होता किन्तु धर्मधार्मि-

भावमे भेदाभेद उभय आवश्यक होते है। ब्रह्ममे सत्त्वका अत्यन्त अभेद होनेसे उसमे काल्पित भेदमूलक धर्मधर्मिभाव होता है। उक्त चिद्रूपरूप सत्त्व जडसे अत्यन्त भिन्न होनेसेभी कल्पित तादात्म्यसे जडधर्म होता है। अर्थात् ब्रह्ममे अत्यन्ताभेद रहते हुएभी कल्पित भेदमे ब्रह्मकाधर्म सत्त्व होता है। और जड प्रपचसे अत्यन्त भिन्न होनेसेभी कल्पित जडतादात्म्यसे (जडाभेदसे) उक्त सत्त्व जडका धर्म होता है, उक्त सत्त्व किसिकाभी (जडका या ब्रह्मका) वास्तविक धर्म नही है। परंतु जो पदार्थ ब्रह्ममे आरोपित होगा उसीमेही ब्रह्मका धर्मरूप जो उक्त चिद्रूपरूपसत्व उसके ससर्गका आरोप होगा, जैसे शुक्तिमे आरोपित जो रजत उसमे शुक्तिनिष्ठ सत्त्व और इदतारूप धर्मका आरोप होता है। फलत रजतत्वविरोधी जो शुक्तिगत सत्त्वादि धर्म उस धर्मादिका ससर्ग आरोपके अन्यथा अनुपपत्तिसे जैसे शुक्तिमे रजत आरोपित यह सिद्ध होता है ऐसे जड पदार्थमे जडत्वविरोधी ब्रह्मसत्ताके आरोपकी अन्यथा उपपत्ति न होनेसे जडपदार्थ ब्रह्ममे आरोपित है यह सिद्ध होता है। अतएव जगन्निष्ठ मिथ्यात्वही प्रतिपन्न होता है। तात्पर्य यह है कि कोईभी पदार्थकी सत्ता स्वीकार करनेके लिये वह पदार्थ ब्रह्ममे आरोपित है ऐसा मानना होगा। सत्ता ब्रह्मधर्म स्वरूप होनेसे, उक्त पदार्थका ब्रह्ममे आरोप होनेसेहि ब्रह्मनिष्ठ सत्तासे वह पदार्थ सत्तावान होगा। अतएव सत्ताप्रतीति अनुसारसे सर्व पदार्थ ब्रह्ममे आरोपित यह अवगत होता है। अतएव सर्व पदार्थका मिथ्यात्व सिद्ध होता है। अतएव जड और चेतनकी सत्ता एक होनेसेभी जगत् सत्य नही

किन्तु मिथ्या है।

(थ) जो निर्गुण वही सगुण इस मतकी असमीचीनता प्रदर्शनः—

(२) एकही निरंशका कर्तृत्व और कर्मत्व, गुणत्व और प्रधानत्व, सिद्धत्व और साध्यत्व, सापेक्षत्व और निरपेक्षत्व, विषमत्व और समत्व-इन सब द्वन्दरूपसे अवस्थान युक्तियुक्त नही है। समुद्रका दृष्टांत संगत नहीं है। समुद्र सावयव पदार्थ है। ब्रह्म निरवयव है। ब्रह्ममे एकत्व अनेकत्व अंशांशिभाव प्रभृति समस्तही अनुपपन्न है। अतएव जो निर्गुण वही सगुण यह वचन विचारसह नहीं है। एकका उभयात्मकत्व विरुद्ध है।

पूर्वपक्ष—एकही वस्तु अनेकाकार होती है। उस आकारमे कोईआकार अनुवृत्तिबुद्धिग्राह्य, कोई आकार व्यावृत्ति-बुद्धिग्राह्य है। उस स्थलमे जो अनुवृत्तिबुद्धिग्राह्य वही अनुवृत्त होनेसे सामान्य रूपसे कथित होता है और जो व्यावृत्तिबुद्धिग्राह्य है वह व्यावृत्त होनेसे विशेषरूपसे कथित होता है। अतएव वस्तुका द्वयात्मकत्व हो सकेगा।

सिद्धांत—इसस्थलमे प्रश्न है कि, क्या, जो सामान्य वही विशेष है, अथवा सामान्य अन्य है और विशेष अन्य है। प्रथम पक्षमे सामान्य और विशेपका परस्पर स्वभावत्व होनेसे सांकर्य होगा। अतएव यह सामान्य यह विशेष, ऐसे विभाग-अभावके कारण परमार्थतः एकही वस्तुका द्वैरूप्य उपपन्न नहीं होगा। द्वितीयपक्ष स्वीकार करनेसे नानात्व होनेका कारण वस्तुद्वय होगा, एक वस्तुका द्वैरूप्य नहीं होगा। किंवा एक वस्तुसे सामान्य

विशेषका अभेद अंगीक्रियमाण होनेसे उनके परस्परस्वभावका विवेक सिद्ध नहीं होगा क्योंकि एकसे अभेद होनेसे उस उभयकाभी एकवस्तु स्वभावके समान अभेद प्रसंग होगा। यदि सामान्य और विशेषकी परस्पर स्वभावभिन्नता अंगीकृत हो, तो उनकी अभेदयुक्त एकवस्तु सिद्ध नहीं होगी। उस उभयके साथ अभिन्न होनेसे उस एकत्वरूपसे अभिमत पदार्थकाभी सामान्य विशेषस्वरूपके समान द्वित्व प्रसंग होगा। अतएव एक, उभयात्मक यह परस्पर व्याहत है। एकरूपत्व होनेसे धर्मभेद सिद्ध नहीं होगा। वस्तुका एकत्व स्वीकृत होनेसे अकल्पित धर्मभेद सिद्ध नहीं होगा क्योंकि एकवस्तुका भेद विरूद्ध है। अकल्पितभेद अर्थसे नानात्व ज्ञापित होता है। जो नाना है वह कैसे एक होगा? विधि और प्रतिषेध एकत्र अयुक्त होनेसे एक और नानात्व परस्पर विरूद्ध है। एकत्व और अनेकत्वका परस्पर परिहारस्थितिलक्षण विरोध होनेसे एकका बहुआकार संभव नहीं है। अतएव एकका धर्मभेद कल्पित होगा। सुतरां, जिस हेतुसे कल्पित अनेकता संभव है उसी हेतुसे एकका वास्तव द्वैरूप्य संभव नहीं है। औरभी ' धर्मधर्मिभाव सत्य है ' ऐसे मतानुसारियोंको अत्यन्त भिन्न पदार्थद्वयका गवाश्वादिके समान धर्मधर्मिभाव अनुपपन्न होनेसे उन उभयके अभेदको वास्तव कहना होगा और इस हेतुसे एककी अनुवृत्तिसे अपरकी व्यावृत्ति दुर्घट होगी।

पूर्वपक्ष—चिद्‌लक्षण आत्मा द्रव्यरूपसे सर्वावस्थामें अभिन्न होनेसे अनुगमात्मक है, पर्यायरूपसे प्रतिअवस्थामें भिन्न होनेसे व्यावृत्तात्मक है।

सिद्धान्त–अब प्रश्न है कि चेतन्यात्मक द्रव्य तद्पर्यायके साथ कदाचित् अविकृत होकर संबंध प्राप्त होता है अथवा पूर्वरूप त्यागपूर्वक संबध-प्राप्त होता है ? । यदि अनन्तरपक्ष स्वीकृत हो तो अनन्यथावान् पदार्थकाही अभाव होगा और नित्यत्व हानि-प्रसंग होगा । यदि प्रथम पक्ष स्वीकृत हो तो पूर्वोत्तर अवस्थाका विशेष (अन्यथात्व) नहीं होगा । अविकृत नित्य पदार्थकी क्रामिक या युगपत् अर्थक्रिया नहीं हो सकती । जो पूर्वोत्तर अवस्थामें विशेषता प्राप्त नहीं होता वह परिणामी नहीं होता । यदि द्रव्य और पर्यायका अभेद अंगीकृत हो तो सर्वथाहि अभेद होगा तद्विपरीत भेद नही होगा । एकका एकदा परस्पर विरूद्ध विधि प्रतिषेध युक्तियुक्त नहीं है अन्यथा एकत्व हानि होगी । विरूद्ध धर्म युक्तकाभी यदि एकत्व हो तो भेदव्यवहारका उच्छेद होगा। एक और अनेक ये परस्पर परिहारस्थित लक्षण है । एकका स्वभावद्वय युक्त नहीं है । ऐसा होनेसे एकत्व हानि प्रसंग होगा । अतएव प्रतिपन्न हुआ कि एक आत्मामें व्यावृत्ति और अनुगम सभव नहीं हे । नित्य अथच अवस्थावान् ऐसा नहीं हो सकता । अवस्था अवस्थावानसे अनन्य होनेसे अवस्थाके समान अवस्थावानकेभी उत्पत्ति विनाश होंगे अथवा अवस्थावानके समान अवस्थाकाभी नित्यत्व होगा ; किंवा उपकारके अभावके कारण अवस्थासमूह तत्सबंधीय है ऐसा सिद्ध नहीं होगा । अवस्था होनेसे नित्य एक चेतन स्वीकार नहीं कर सकते । (६)

(६) इसी हेतुसे बौद्धलोक, जैन और मीमांसकाः (जैमिनीक) समान अनुगत-व्यावृत्तात्मक आत्मा किंवा न्यायवादी दिग्प्रभाकरके समान

(३) अब शक्तियुक्त चेतन जगत्‌रूपसे परिणत होता है इसपक्षकी परीक्षा की जाती है । प्रथमतः परिणाम विषयमे कहते है ।

(द) ब्रह्मपरिणाम खण्डनः—

सच्चित्स्वरूप निरवयव है, उसका सपूर्ण या एकदेशस्थ परिणाम अनुपपन्न है । अशत परिणाम सभव नहीं है क्योंकि वह निरवयव है । उपचय अपचय सावयवव्याप्त होता है । अवयवका अन्यथा विन्यासविना परिणाम दृष्ट नहीं हैं । सावयव वस्तुही परिणाम प्राप्त होती है, सावयवत्व निरवयवत्व परस्पर विरूद्ध है । एकही वस्तु एकसमयमे सावयव और निरवयव होगी यह सभव नही है । जो निरवयव वह कारणरूपसे तथा कार्यरूपसे रहेगा ऐसा हो नही सकता । एक निरवयवका द्विधासत्त्व हो नहीं सकता । जो द्विधाभूत है वह सावयव होगा । अतएव चेतनका अशत परिणाम हो नही सकता । उसका संपूर्ण परिणामभी सभव नही है । ऐसा होनेसे जगद्व्यतिरेकसे चेतनका असत्व होता है, क्योंकि पूर्वरूपके सपूर्ण त्याग-पूर्वक रूपान्तरकी उत्पत्ति होनेसे इस उत्पन्न पदार्थका प्राक्तनरूपत्व रह नहीं सकता । अथच जगतके प्रकाशरूपसे चेतनतत्त्व प्रातिभात होता है । सर्वावधि साक्षिरूप होनेसे चेतन निर्विकार (परिणामरहित) है । परिणाम नियमपूर्वक परिणामीके आश्रित होता है । अविकारि

अनुगत आत्मारूप द्रव्य नहीं मानते । अद्वैतवेदान्तिलोक अनुभवके अन्यथा अनुपपत्तिसे साक्षी स्वीकार करके उसमे परिणाम न मानकर परिणाम और तदाश्रयका अनिर्वचनीयत्व अंगीकार करते है ।

चैतन्य परिणामिरूपसे विकारका आश्रय हो नहीं सकता। चेत-
नके कार्याकारसे परिणाम अथच अपरिणत स्वप्रकाश साक्षिरूपसे
अवस्थान, ये उभय परस्पर विरुद्ध है। एक समयमे एक वस्तुका
परिणाम अथच अपरिणाम ऐसा नहीं हो सकता। स्वरुपसे अप्र-
च्युत-स्वभावका सर्व प्रकार तद्विपरीत कार्याकार परिणाम संभव
नहीं है। निरंश कारणकी अनेकरूपता विरुद्ध है।

नित्यस्वरुप चेतनका परिणाम हो नहीं सकता। अंशतः या
संपूर्ण परिणामप्राप्त पदार्थ अनित्य होगा। भागशः परिणाम
होनेसे सावयव होनेके कारण कार्य होगा। अतएव अनित्य
होगा। संपूर्ण परिणाम होनेसे सर्वात्मरूपसे प्राक्तनरूपका त्याग
होनेके कारण, साक्षात् अनित्यत्व होगा। अतएव चेतनस्वरूप
जगत्रूपसे परिणाम प्राप्त नहीं है।

यदि कार्य चित्परिणाम होता तो उसकी चिद्रूपता होती।
चैतन्य-परिणामका जडत्व उपपन्न नहीं है। जडपदार्थ चेतना-
भिन्न या चेतनका धर्म नहीं। प्रकाशस्वभावका प्रकाश्यधर्म स्वाभा-
विक नहीं है। दृश्य द्रष्टृस्वरूपका स्वरूपभूत नहीं है। अथच,
परिणाम परिणामिका स्वरूपभूत होता है। अतएव चेतन परिणामी
नहीं है।

एकमात्र चेतनकाही अवस्थाभेदसे कारणत्व और कार्यत्व
अंगीकृत हो नहीं सकता, क्योंकि चेतन अविकारि है। विका-
रका अर्थ परिणाम या परिस्पन्द या परस्पर संबंधकृत अतिशयता-
योग है। अमूर्त निरवयव सन्मात्रस्वरूपका सर्व प्रकार विकार
अनुपपन्न है। यादृशस्वरूप कारणावस्थामे रहता है तादृश-

स्वरूपही यदि कार्यावस्थामे रहेगा तो कार्य और कारणावस्थाकी विशेषता न होगी। विशेषता स्वीकार करनेसे उस आगन्तुक विशेषरूपसे उस चेतनका परिणामित्व प्राप्त होगा। अतएव विकार अभावरूप अविकारित्व अव्याहत नहीं रहेगा। कार्यसमूह परिवर्तित हो अथच उपादान कारण निर्विकार रहे ऐसा हो नहीं सकता। कार्यगत परिवर्तनके साथ उपादान कारणकाभी परिवर्तन होगा, क्योंकि कार्य और उपादान कारणका तादात्म्य होता है, कार्य उसका स्वरूपभूत होता है। चेतनरूप कारणका निर्विकारत्व अव्याहत होनेके लिये यदि उक्त तादात्म्यको मिथ्या माना जावे तो जडरूप अन्यथाभाव मिथ्या होगा। एककाही, परिणामविना, अन्यथाभाव होनेसे वह अन्यथाभाव मिथ्या हे। (७)

(ध) शक्तियुक्तता निर्वचनार्ह नहीं है —

अब शक्तियुक्तता सबंधमे विचार किया जाता है। यह जो चैतनका शक्ति वैशिष्ट्य है, वह, यथा, समवायद्वारा होता है?

(7) (a) If it is said that generation is only the manifestation of a substratum which does not change, the contradictions are not diminished, but increased, since this theory expresses only the more clearly the idea of the one unchanging substratum as having concentrated in it all multiplicity and all contradiction, as the source from which the plurality and the opposed qualities of the outward manifestation shall be evolved

(Herbart)

अथवा संयोगद्वारा किंवा तादात्म्यद्वारा अथवा मायिक है ? समवायद्वारा हो नही सकता, क्योंकि शक्तिको चेतनसे सर्वथा भिन्न माना नही जाता। समवायस्थलमे सबंधिद्वय सर्वथा भिन्न होता है और वह समवायभी सबंधिसे अत्यन्त भिन्न होता है। चेतनकेसाथ शक्तिका संयोग सबंधभी हो नही सकता। साश-द्वयकाहि संयोग होता है, निरंशद्वयका किंवा एक सांश और अपर निरंश इन दोनोका संयोग नही होता। औरभी, संयोग समवायाधीन होता है। समावायका खण्डन आगे करेंगे। तृतीय पक्षमे विचार्य है कि वह तादात्म्य क्या भेदसहिष्णु है अथवा अभेदरूप है ? समवाय निरासद्वारा आद्यकल्प निरसन होता है। भेदाभेद उभयरूपता पहिले खण्डित हुई है, औरभी करेंगे। द्वितीय कल्पमे चेतनातिरिक्त शक्ति सिद्ध नही होगी। चतुर्थपक्ष सिद्धांति-सम्मत पक्षमे अतर्भाव होगा।

(b) In its proper sense, causality is not a category which is applicable to the relation of the infinite to the finite, and if we attempt so to apply it, what it expresses is not the reality of the finite, but either the limitation or the non reality of the infinite

Causality is a category only of the finite The relation of cause and effect is one which implies the succession or (though not with strict accuracy) the co existence of its members In the latter case it presupposes the existence of things external to, and affecting and being affected by each other.

(न) अचित्य शब्दका अर्थविचार —

अचिंत्य शब्दसे साधारणत सत्यरूपसे नित्य एसा अर्थ गृहीत होता है परतु यह सगत नही ह। ऐसा होनेसे उक्त शब्द प्रयोग व्यर्थ होता। चिंताकी अगम्य ऐसा अर्थ होनेसे, उस शक्तिका अस्तित्व या नास्तित्व विषयमे कुछ नहीं कह सकते। जो कदाचित्भी कोई आकारसे बुद्धिमे आरोहित नही है उसका प्रतिपादन नही कर सकते। अचिंत्य पदार्थ रहनेसे हम उसे नही जान सकते और हम जहातक जान सकते है वहातक उसका अस्तित्व नही रह सकता। और यदि अचिंत्य अर्थ सत् या असत् या सदसद्रूपसे अनिर्वचनीय हो तो वह मिथ्या होगा। उस मिथ्या पदार्थका सबंधमूलक चेतनका सगुणभावभी मिथ्या होगा। ऐसे मिथ्या पदार्थको चेतनके शक्ति रूपसे अभिहित नही कर सकते। तोभी, शक्तिसबधम विचार करते है।

In the former, it is a relation in which the first member is conceived of as passing into the second the cause, or the sum of conditions which constitute it loses its existence in the effect or in the sum of the new conditions to which it has given rise The cause, in other words, is only cause in and through the consummated result which we call effect, and the very reality or realisation of the former implies, in a sense, its own extinction In the impact of two balls the motion of the first becomes the cause of the motion of the second only

(प) शक्ति खण्डनः—

(१) चेतनके समसत्ताक कोईभी पदार्थ नही है, अतएव कोई दार्थ चिच्छक्ति नही है:—

शक्ति, शक्तिमानके समसत्ताक होती है। प्रकृतस्थलमे चेतनके समसत्ताक कोई पदार्थ नही है। चेतनकी सत्ता और ज्ञेय (जड) पदार्थकी सत्ता सम नही है। चेतन स्वप्रकाश होनेसे किसिकेभी अधीन नही है, अर्थात् अपरके सत्तासे सत्तावान नही है, किंवा अपरके भानसे भासित नहीं है अथवा अपरके आश्रित नही है। किंतु जडपदार्थ तद्विपरीत है। अतएव जड, चेतनके समसत्ताक नही है। चेतन, अवस्थाका प्रकाशक, स्वरूपतः अवस्थारहित निर्विकार है; जडपदार्थ, अवस्थाभेदसे विकारग्रस्त है। अतएव ज्ञान और ज्ञेय समसत्ताक नही है। जडको चेतनके समसत्ताक कहनेके लिये यह प्रदर्शन करना होगा कि, उसकी सत्ता चेतन-सत्तासे भिन्न अथच तत्सदृश है, अथवा वह चेतन-सत्तारूप किंवा उसके अंतर्गत है। परंतु ये सब पक्षही असंगत है। अतएव जड, चेतनके समसत्ताक नही है। चेतनसे जडकी सत्ता अभिन्न

---

when it has ceased to exist in the former; the force which has existed as heat becomes the cause of motion only when it has exhausted itself of its existence in the one form and become converted into the other. But, oviously, in neither of these senses can we embrace the relation of the infinite and the finite under the form of causality. The infinite cannot be conceived of as external to, and acting on, the finite, as one finite body is out-

नहीं है। अथच चेतनके साथ जडका तादात्म्य होनेसे उसको चेत-
नसे भिन्नरूपसेभी निर्देश नही कर सकते। अवशेष मानना होगा
कि, सापेक्ष जडपदार्थ स्वत सिद्ध चेतनसत्तासे सत्तावान, उस
प्रकाशसे प्रकाशित अथच न्यून सत्तावान है। न्यूनसत्ताक होनेसे
वह चेतनरूप अधिष्ठानका स्वरूपभूत नहीं होगा। अध्यस्त पदा-
र्थके अपेक्षा अधिष्ठान विषमसत्ताक होता है। अतएव (सम
सत्ताक) न होनेसे कोईभी पदार्थ चेतनके शक्तिरूप नहीं है।

---

side of, and acts on, another, in such a relation it would cease to be infinite. Nor, again, can you speak of the infinite as a cause which, in producing the finite, passes wholly into it and becomes lost in it, for, in that case, the existence of the finite would be conditioned by the non-existence or extinction of the infinite

(Caird's "Spinoza")

(c) So far as a thing is timeless it cannot change, for with change time comes necessarily But how can a thing which does not change produce an effect in time? That the effeet was produced in time implies that it had a beginning, And if the effect begins, while no beginning can be assigned to the cause, we are left to choose between two alternatives Either there is something in the effect—namely, the quality of coming about as a change—which is altogether uncaused Or the timeless reality is only a partial cause, and is determined to act by something which is not timeless In

(२) स्वप्रकाश चेतन निर्धर्मक है:—

यदि स्वप्रकाश ज्ञान-स्वरूप सधर्मक हो तो उसका धर्म जड (अस्वप्रकाश) या अजड (स्वप्रकाश) होगा। विचार करनेसे ये दोनो पक्षभी असंगत प्रतिपन्न होते है। स्वप्रकाशके अंतर्गत यदि जड रहे तो उसको स्वपकाश नही कहा जायगा। जो स्वप्रकाश वह अन्यके अधीन नहीं है। जो जड है वह अन्यके अधीन है, स्वत सिद्ध नही। जिसका प्रकाश अपरके अधीन है उसको जड कहते है। जो अन्यके अधीन है, कैसे वह स्वत. सिद्धके अंतर्भूत होकर उसका धर्म होगा ? जड कभीभी सर्वावधि साक्षिभूत विकाररहित स्वप्रकाशका धर्म नहीं हो सकता। जो जड वह चेतनके विषयरूपसे प्रतिभात है। विषय कभीभी विषयीका स्वरूपभूत हो नही सकता अन्यथा उसका विषयत्वही लुप्त होगा। अतएव सिद्ध हुआ कि जड स्वप्रकाश ज्ञानका धर्म नहीं है। स्वप्रकाशज्ञानस्वरूपका धर्म स्वप्रकाशरूपभी नहीं है। जो स्वप्रकाश है वह निरपेक्ष है। यदि वह सापेक्ष हो तो उसके स्वप्रकाशत्वका लोप होगा। अथच जो धर्म वह सापेक्ष होता है। धर्मधर्मी परस्पर सापेक्ष होते है। दो स्वप्रकाशोंका परस्पर सापेक्षभाव नही हो सकता। सापेक्षताविना धर्मधर्मिभावभी नही होगा। अतएव जो स्वप्रकाश है वह स्वरूपतः धर्मी या धर्म नहीं है, वह निर्धर्मक है। यदि साचित्स्वरूप निर्धर्मक न होता

---

either case, the timeless reality fails to explain the succession in time.

(Mc. Taggart's 'Hegelian Dialectic')

तो नित्य न होता। धर्माधर्मीका तादात्म्य होनेसे धर्मके उत्पत्ति और नाशसे धर्मीके उत्पत्तिनाशरूप विकार होंगेहि। यदि सच्चित्स्वरूप सधर्मक होता तो निरूपणार्हधर्मका संबधवानभी होता, अथच धर्मसबंध उपपन्न नहीं है। अतएव वह निर्धर्मक है (८)। निर्धर्मक अर्थसे वास्तव धर्मका निषेध ज्ञापित होता, आरोपित धर्मका निषेध नहीं है। व्यावहारिक धर्म रहते हुएभी अपने समसत्ताक धर्मका विरह होनेसे निर्धर्मकत्व उपपन्न होता है। अतएव चेतनके समसत्ताक कुछ न रहनेसे, अथच शक्तिमानकी स्वरूपभूत शक्ति उसकी समसत्ताक होती है ऐसा नियम होनेसे चेतनके शक्तिरूपमें कुछ निर्वचनीय नहीं है।

(३) गुण और गुणी, कार्य और उपादानकारण सर्वथा भिन्न नहीं है —

अब धर्मधर्मिभाव (गुणगुणिभाव) और कार्यकारण विचारद्वारा उक्त सिद्धात प्रतिष्ठित करते हैं। सर्वथा भिन्न ऐसे दो पदार्थका गुणगुणिभाव कार्यकारणभाव नहीं होता। द्रव्यके साथ एकता-

---

(८) भिन्नत्वे अभिन्नत्वे सम्बन्धे असम्बन्धत्वे चातिप्रसङ्गानवस्थाभ्यां धर्मधर्मिभावानुपपत्तेः। ..नच धर्माभावरूप धर्मभावाभावाभ्यां व्याघातेन दुस्तर्कतास्येति वाच्यं। धर्माभावस्य स्वरूपतयैव सत्वाङ्गीकारेण व्याघाताभावात्। अभेदेऽपि भेदकल्पनया धर्मधर्मिभावव्यवहारस्य त्वयापीष्टत्वात्।

(अद्वैतसिद्धि)

प्राप्त होकरही गुणकी प्रतीति होनेसे गुणगुणीकी सर्वथा पृथकत्व प्रतीतिसिद्ध नहीं है।

पूर्वपक्षी—(नैयायिक-वैशेषिक-प्रभाकर) गुणगुणी सर्वथा भिन्न होनेसेभी समवाय संबंधद्वारा उनकी अपृथकसिद्धि होती है। समवाय उस संबंधिद्वयसे पृथक पदार्थ है।

सिद्धान्ती—संबंधीयोंके पृथकत्व सिद्ध होनेके पश्चात् उनका संबंध प्रतीत होनेसे समवायकी कल्पना कर सकतेथे। परंतु गुणगुणिस्थलमे पृथक प्रतीतिका अभाव होनेसे, समवाय कल्पना व्यर्थ है। समवाय संबंध संबंधिसे स्वयं भिन्न है, अतएव वह संबंधियोंकी अभेदबुद्धि आधान करनेमे सक्षम नहीं है। यदि विशेषण, विशेष्यसे एकान्त भिन्न होता तो विशेष्यमे स्यानु-रूपा सदाबुद्धि कैसी जन्मायगी ?

औरभी, मृद्घट, शुक्लपट, ऐसा सामानाधिकरण्य प्रत्यय होता है। ऐसा प्रत्यय गुणगुणी कार्यकारण का भेदबाधक है।

पूर्वपक्ष— शुक्लपट इत्यादि स्थलमे सामानाधिकरण्य प्रतीति भ्रमरूप है।

सिद्धांत—ऐसा कहना उचित नहीं है। रूपादि गुणके साधक रूपसे अभिमत जो शुक्लपट इत्यादि प्रत्यक्ष है वह गुणी-तादात्म्य (अभेद) रूपसे गुणादि-विषयक होता है। इस प्रत्यक्षको यदि भ्रमरूप मानोगे तो गुणकीभी सिद्धि न होगी, क्योंकि गुणमात्र-गोचर प्रत्यक्ष नहीं होता किंतु धर्मीके साथ गुणका प्रत्यक्ष होता है। अतएव प्रत्यक्षद्वारा गुणिभेद कैसे सिद्ध होगा ? उक्त शुक्लपट, मृद्घट इत्यादि प्रत्यक्षको यदि प्रमा-

रूप मानोगे तो इस प्रत्यक्षद्वारा गुणीके अभिन्नरूपसे (भिन्न रूपमे नही) गुणकी सिद्धि होगी। अतएव तादृश उपनीव्य प्रत्यक्षका विरोध होनेसे कोईभी प्रमाणद्वारा भेदकी सिद्धि नही होगी। भेदव्यापक जो पृथक ज्ञति और पृथक स्थिति उसका अभाव गुणगुण्यादिमे और कार्यकारणादिमे होनेसे उसका व्याप्य जो भेद वहभी दुर्लभ होगा। अतएव गुण गुण्यादिका समवाय नही मानना। उल्लिखित विचारद्वारा सिद्ध हुआकि उपादान कारणसे कार्य तथा गुणीसे गुण सर्वथा भिन्न नही है।

(४) कार्यकारण, गुणगुणी, सर्वथा अभिन्न नही है –

यदि अत्यत अभेद होगा तो घट घट प्रतीति जैसे नही होती ऐसे उक्त प्रतीतिभी (मृद्घटप्रतीतिभी) नही होती। जो जिससे अव्यतिरिक्त है वह उसका कारण या कार्य नहा होता क्योंकि कार्य और कारणका भिन्न लक्षण होता है। उपादान पूर्वसिद्ध होता है और उपादेय असिद्ध होता है। एकत्र युगपत् सिद्धत्वासिद्धत्व विरुद्ध हे। अतिशयता न रहनेसे कार्य कारणभाव नही हो सकता, अन्यथा यह कार्य और यह कारण ऐसी असकीर्ण व्यवस्था कैसे होगी? कार्यकारणका सर्वथा अभेद होनेस आपनहीं अपना कारण होगा। कार्यकारणका ऐक्य हो तो उत्पत्तिके पूर्व कारण रहनेसे, तदभिन्न कार्यकी भी सत्ता आवश्यक होनेसे, सदाही कार्य उत्पन्न होगा। कारणके समान कार्यका सत्त्व होनेसे कारकव्यापार निरर्थक होगा। अतएव सिद्ध हुआ कि कार्य कारणा भिन्न नही है। अभेद होनेसे रूपान्तर नही होगा 'रुपान्तरत्वव्याघात'

और रूपान्तर होनेसे अभेद नहीं होगा ' अभेदव्याघातः '। धर्म-धर्मिभावमी अत्यन्त अभेदस्थलमे नहीं होता। अभेद, संबंधरूप नहीं है।

(५) **कार्यकारणका भेदाभेद्वाद खण्डन**— समान-सत्ताक भेद और अभेद युगपत् एकत्र असंभव है। घटादि यदि मृदादि-अभिन्न हो, तो मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति नहीं होगी।

पूर्वपक्षी—- भेदमी है अतएव उससे उत्पत्ति होगी।

सिद्धान्ती—जायमान पदार्थ मृत्तिकासे भिन्न होनेसे उत्पत्तिके पहिले नहीं है ऐसा कहना होगा।और घटादि जायमानही है, क्योंकि उत्पत्तिके पहिले घटशब्द और घटबुद्धि नहीं होती। जो पहिले असत् वह सत्से भिन्न होगा अतएव उसमे सत्का अभेद नहीं होगा। इस प्रकार मृत्तिका उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है ऐसी प्रतीति घटोत्पत्तिकालमे मृत्तिकामे न होनेसे, उत्पत्ति-विनाशवान घटादिकी मृदभिन्नता नहीं होती। अतएव जो उत्पन्न-विनष्ट होता है वह उसके उपादानसे अत्यन्त भिन्नही होता है। अतएव भिन्नाभिन्नपक्ष समीचीन नहीं है।

अब घटपदका अर्थ प्रदर्शन पूर्वक पुनः भेदाभेदपक्ष विशेषरूपसे खण्डन करते है। जो पृथुबुध्न (गोलाकार) उदराकार विशिष्ट वस्तु वह घट शब्दका अर्थ है, केवल मृत्तिका घटशब्दका अर्थ नहीं है। केवल मृत्तिकामे घटबुद्धि नहीं होती किंवा घट शब्द प्रयुक्त नहीं होता। यदि घट मृत्तिकासे अभिन्न होगा, तो उत्पत्तिके पहिले भी मृत्तिका जैसे अनुभव की विषय होती है ऐसा कम्बुग्रीवाकार घट अनुभूत होना चाहिये; मृत्तिका जैसे अपनेमे

कारण नहीं है वैसे घटमेभी कारण नहीं होती।

पूर्वपक्षी— भेद रहनेसे घटकी पूर्वानुपलब्धि होती है तथा मृत्तिका घटकी कारण है इस प्रकार व्यवस्था होती है।

सिद्धान्ती— इसस्थलमे प्रष्टव्य है, उस भेदके रहनेसे क्या होता है? जैसा घटस्थितिकालमे, भेद, अभेद-सत्ता-विरोधि नहीं है वैसा घटोत्पत्तिके पहिले भी, भेद, प्रतियोगिसत्ताका (अभेदकी सत्ताका) विरोधी नहीं होगा। अतएव भेद माननेसेभी उक्त दोष होगा अर्थात् घटोत्पत्तिके पहिले घटबुद्धि और कार्यकारणभाव अनुपपत्तिरूप दोष होगा। भेद, विद्यमान जो प्रतियोगी (अभेद), उसके अनुपलंभमे प्रयोजक नहीं होता (अर्थात् भेद रहनेसे अभेद प्रतीत नहीं होगा ऐसा कह नहीं जा सकता) अथवा घटके कार्यत्वमेभी (घट कार्य होनेके लिये भी) भेद प्रयोजक नहीं है। ऐसा होनेसे (प्रयोजक होनेसे) घटस्थितिकालमेभी भेद रहनेसे अभेदानुपलब्धि प्रसङ्ग होगा और घटकी पुनरुत्पत्ति प्रसङ्ग होगा। तात्पर्य यह है कि, भेदहीं अभेदकी अनुपलब्धि और घटके कार्यत्वमे प्रयोजक है और वह (भेद) स्थितिकालमे (घटोत्पत्तिके अनन्तर) है परंतु स्थितिकालमे घट और मृत्तिकाके अभेदकी अनुपलब्धि नहीं है तथा घटकी कार्यताभी स्थितिकालमे (कार्यके अनन्तरक्षणमे) नहीं है। अतएव भेद, अभेदके अनुपलब्धिमे और घटके कार्यतामे प्रयोजक नहीं होगा। स्पष्टीकरण—मृत्तिकागत रूपादि मृत्तिकाके और मृत्तिकानिष्ठ कार्यताके प्रयोजक नहीं है। इसका हेतु क्या है? मृत्तिकामे जो मृत्तिकाका अभेद उसके अविरुद्ध बहुरूपादि (मृत्तिकागतरूपादि) होते है, यही वह हेतु है। इस प्रकार

मृद्घट-भेदभी मृद्गत अभेदके अविरुद्ध होनेसे उससे (उक्तभेदकृत) घटके अनुपलंभादि सिद्ध नही होंगे क्योंकि घटस्थितिदशामे भेद रहनेसेभी घट-अनुपलंभादिका अभाव होता है अर्थात् यदि भेद घटके अनुपमलंभ और उत्पत्यादिमे प्रयोजक हो तो घटोत्पत्तिके अनन्तरभी घट अनुपलब्ध होगा और घटोत्पत्ति अनन्तर भी उस घटकी उत्पत्ति होती । परंतु यह दृष्ट नही है । अतएव भेद उक्तद्वयका प्रयोजक नही है ।

पूर्वपक्षी—पहिले घट सत् नही है । अतएव अनुपलंभ और कार्य-कारण-भाव उत्पन्न होगा । अर्थात् घटोत्पत्तिके पहिले उसका अभेद रहते हुएभी, घटका असत्व होनेसे उसका अनुपलंभ होता है ।

सिद्धान्ती—ऐसा कहना उचित नही है । घटाभिन्न मृत्तिका सत् होनेसे घटका असत्व अनुपपन्न होगा । अर्थात् मृदभिन्नता होनेसे, और मृत्तिकाकी घटाभिन्नता रहनेसे घटकाभी असत्व अयुक्त है ।

पूर्वपक्षी—घटाकारसे भेदही है । अर्थात् घटका घटाकारसे मृदभेद नही है जिससे उक्त दोष होगा ।

सिद्धान्ती–ऐसा कहनेसे यह प्रश्न है कि किसके साथ मृत्तिका का अभेद है? अभिप्राय यह है कि भेदाभेद उक्ति अयुक्त होगी अर्थात् मृत्तिकाका अभेद न रहनेसे भेदाभेदवाद सिद्ध नही होगा।

पूर्वपक्षी–घटकाही अभेद है, अर्थात् घटका मृत्तिकारूपसे मृत्तिका-अभेदभी है.

सिद्धान्ती—घट तो मृत्तिकाही है। और वह मृत्तिकाभी

पहिले भी वर्तमान है। अर्थात् यदि घट मृत्तिकाभेदका धर्मी होगा तो मृत्समयमे घटसत्ताकी आवश्यकता होनेसे अनुपलभादिकी अनुपपत्ति तदवस्थ होगी।

पूर्वपक्षी—भेदाश घट पहिले नही है इस हेतुमे उक्त दोष नही होता, तात्पर्य यह है कि कार्यकारणसे अतिरिक्त भेद या अभेद नही है, किंतु कारणही अभेद है। और कार्य उत्पत्तिके पहिले असत् है। अतएव अनुपलभादिकी अनुपपत्ति नही है

सिद्धान्ती—ऐसा कहनेसे कार्यकारणके अत्यन्त भेदवादि मतसे भेदाभेदमतमे विशेष कुछ नही होगा।

(६) गुणगुणीका कार्यकारणका तादात्म्य होता है और तादात्म्यका लक्षणः—

आशका—गुणगुणीका कैसे सबध है ?

उत्तर—तादात्म्यरूप है ?

आशका—वह कैसा है ?

उत्तर—गुणीका तादात्म्य गुणमे विद्यमान है। गुणमे गुणिभिन्नत्व है अथच गुणीसे अभिन्न गुणका सत्व होता है। इस प्रकारसेही गुणमे गुणीका तादात्म्य होता है। अर्थात् सत्ताका अनवच्छेदक जो भेद, वही तादात्म्य पदवाच्य है। अर्थात् जो-भेद सत्ताका अवच्छेद (पृथकत्व) सपादन नही करता उस भेदको तादात्म्य कहा जाता है, गुणीका यह भेद गुणमे रहता है। जैसे घगादि पदार्थ दडादिसे भिन्न वैसेहि मृत्तिकादिसे भी भिन्नही है, अन्यथा प्रागुक्त दोष होगा। परतु मृत्तिका और घटका भेद विद्यमान होने सभी परस्पर सत्ताका अवच्छेदक नही होता। अथात् भेद रहनेसेभी

क्त भेद मृत्तिकाकी सत्ता और घटकी सत्ता इन उभय सत्ताको थक नही करता। तात्पर्य यह है कि मृत्तिकासे घट भिन्न होनेसेभी ह घटगत भेद मृत्तिका–सत्ताका भेदक नही होता। अतएव उक्त द सत् नही है। जो–भेद, सत्ताका भेद करता है, वह भेद सत् होता है। जैसे दंड और घटका भेद सत्ताका अवच्छेदक होता है अतएव उक्तभेद सत् है। 'मृद्घट' ऐसी प्रतीति होनेसे, तथा मृत्तिकात्व विना घटसत्ताका अदर्शन होनेसे, मृत्तिकाभेद दंडघट-भेदसे विलक्षण होता है।

पूर्वपक्ष–जैसे दंडघट-भेद दंड और घट इन उभयमे विद्यमान रहता है ऐसा अन्यत्रभी (मृद्घटमेभी) रहेगा। अथच दंडघट-भेद सत् है। सुतरां मृद् और घट इन उभयोंके सत्ताका अवच्छेद होगा।

सिद्धान्त–मृद्घटमे आगमनकारी दंडघट–भेद अन्यत्र सत् होनेसेभी, तथा अन्य सत्ताका अवच्छेदक होनेसेभी, मृत्तिका और घट इस अवच्छेदमे सत्ताका अवच्छेद नही करता अर्थात् मृत्तिका और घटकी दो सत्ता नही करता। पूर्वपक्षीके मतमे सम्वायका वाय्वादिमे वृतित्व होनेसेभी अपरस्थलमे (घटपटादिमे) जैसा उस समवायका रूपनिरूपितत्व होता है वैसा वायुमे रूपनिरूपितत्व नही होता (वायुमे रूप नही है); प्रकृत स्थलमेभी ऐसा जानना होगा। अर्थात् अपर स्थलमे भेदका सत्तावच्छेदकत्व होनेसेभी 'मृद्घट' इसस्थलमे सत्तावच्छेदकत्व नही होता। परंतु वेदान्तमतमे भेदमे औपाधिक भेदभी है अर्थात् 'मृद्घट' यह भेद और 'दंड घट' यह भेद पृथक पृथक होनेसे मृद्घटभेद असत् होता है अर्थात् उक्त भेद सत्तावच्छेदक नही होगा। अतएव कोई दोष नही है अर्थात

पहिले भी वर्तमान है। अर्थात् यदि घट मृत्तिकाभेदका धर्मी होगा तो मृत्समयमे घटसत्ताकी आवश्यकता होनेसे अनुपलंभादिकी अनुपपत्ति तदवस्थ होगी।

पूर्वपक्षी–भेदांश घट पहिले नही है इस हेतुमे उक्त दोष नही होता; तात्पर्य यह है कि कार्यकारणसे अतिरिक्त भेद या अभेद नही है, किंतु कारणही अभेद है। और कार्य उत्पत्तिके पहिले असत् है। अतएव अनुपलंभादिकी अनुपपत्ति नहीं है

सिद्धान्ती--ऐसा कहनेसे कार्यकारणके अत्यन्त भेदवादि-मतसे भेदाभेदमतमे विशेष कुछ नही होगा।

(६) गुणगुणीका कार्यकारणका तादात्म्य होता है और तादात्म्यका लक्षणः—

आशंका–गुणगुणीका कैसे संबंध है ?

उत्तर–तादात्म्यरूप है ?

आशंका–वह कैसा है ?

उत्तर–गुणीका तादात्म्य गुणमे विद्यमान है। गुणमे गुणिभिन्नत्व है अथच गुणीसे अभिन्न गुणका सत्व होता है। इस प्रकारसेही गुणमे गुणीका तादात्म्य होता है। अर्थात् सत्ताका अनवच्छेदक जो भेद, वही तादात्म्य पदवाच्य है। अर्थात् जो–भेद सत्ताका अवच्छेद (पृथकत्व) संपादन नहीं करता उस भेदको तादात्म्य कहा जाता है, गुणीका यह भेद गुणमे रहता है। जैसे घटादि पदार्थ दंडादिसे भिन्न वैसेहि मृत्तिकादिसे भी भिन्नही है, अन्यथा प्रागुक्त दोष होगा। परंतु मृत्तिका और घटका भेद विद्यमान होने-सभी परस्पर सत्ताका अवच्छेदक नही होता। अथात् भेद रहनेसेभी

उक्त भेद मृतिकाकी सत्ता और घटकी सत्ता इन उभय सत्ताको पृथक नही करता। तात्पर्य यह है कि मृतिकासे घट भिन्न होनेसेभी वह घटगत भेद मृत्तिका-सत्ताका भेदक नही होता। अतएव उक्त भेद सत् नही है। जो-भेद, सत्ताका भेद करता है, वह भेद सत् होता है। जैसे दंड और घटका भेद सत्ताका अवच्छेदक होता है अतएव उक्तभेद सत् है। 'मृद्घट' ऐसी प्रतीति होनेसे, तथा मृत्तिकात्व विना घटसत्ताका अदर्शन होनेसे, मृत्तिकाभेद दंडघट-भेदसे विलक्षण होता है।

पूर्वपक्ष—जैसे दंडघट-भेद दंड और घट इन उभयमे विद्यमान रहता है ऐसा अन्यत्रभी (मृद्घटमेभी) रहेगा। अथच दंडघट-भेद सत् है। सुतरां मृद् और घट इन उभयोंके सत्ताका अवच्छेद होगा।

सिद्धान्त—मृद्घटमे आगमनकारी दंडघट-भेद अन्यत्र सत् होनेसेभी, तथा अन्य सत्ताका अवच्छेदक होनेसेभी, मृतिका और घट इस अवच्छेदमे सत्ताका अवच्छेद नही करता अर्थात् मृत्तिका और घटकी दो सत्ता नही करता। पूर्वपक्षीके मतमे समवायका वाय्वादिमे वृत्तित्व होनेसेभी अपरस्थलमे (घटपटादिमे) जैसा उस समवायका रूपनिरूपितत्व होता है वैसा वायुमे रूपनिरूपितत्व नही होता (वायुमे रूप नही है); प्रकृत स्थलमेभी ऐसा जानना होगा। अर्थात् अपर स्थलमे भेदका सत्तावच्छेदकत्व होनेसेभी 'मृद्घट' इसस्थलमे सत्तावच्छेदकत्व नही होता। परंतु वेदान्तमतमे भेदमे औपाधिक भेदभी है अर्थात् 'मृद्घट' यह भेद और 'दंड घट' यह भेद पृथक पृथक होनेसे मृद्घटभेद असत् होता है अर्थात् उक्त भेद सत्तावच्छेदक नही होगा। अतएव कोई दोष नही है अर्थात

भेदमे औपाधिक भेद होनेसे अर्थात् मृद्घट निरूपितत्वरूप उपाधि पृथक तथा दंड-घट-निरूपितत्वरूप उपाधिसे पृथक होनेसे दो नही है। दडादि अभावसेभी घटसत्ताका 'सन् घटः' ऐसा अनुभ होनेसे, तथा 'दटघट' ऐसा अनुभवन होनेसे घटसत्ताका अन्यत सिद्ध होता है। मृत्तिकाघटस्थलमे ऐसी प्रतीति न होनेसे अन्यत्व सिद्ध नही है। इसीकोही अद्वैतसिद्धान्तमे उपादान उपादेयका कल्पित भेद कहा जाता है.

(७) पराभिमत भेदाभेद वादका और अद्वैतवेदांत सम्मत भेदाभेदवादका पृथकत्व प्रदर्शन —

अद्वैतमतमे कार्यकारणका भेदाभेद मानाते जाता है, परंतु कारण व्यतिरेकसे कार्यसत्ता अंगीकारपूर्वक उनको (कार्य कारणका) अभेद उक्तमतमे नहीं मानते किंतु कल्पित भेद स्वीकृत करते है। भेदाभेदस्थलमे, पारमार्थिक भेद रहनेसे 'भूतल घटो न' ऐसे प्रतीतिके समान 'मृद्घटो न' ऐसी प्रतीति हो जाती। घट और भूतल इन उभयमे समसत्ताक भेद है, इस हेतुसे घट और भूतलका अभेदानुभवका विरोध होता है। अन्यत्र समसत्ताक भेद अभेदानुभवका विरोधी होनेसे कार्यकारण स्थल मेभी ऐसा विरोध होगा। (९) समसत्ताक भावाभावका

(९) (क) एवंविध भेदाभेदयोरभ्युपगमेचाद्वैतिकत्वापत्ते सामा नाधिकरण्यप्रत्ययस्यत्र कल्पित भेदनापि साय देवदत्त इत्यादाविव सम्भवात्।

(चित्सुखाचार्यकृत नैष्कर्म्यसिद्धि भावप्रकाशिका अमुद्रित)

(ख) भेदाभेदवादिन प्रमाणभ्रान्तिव्यवस्थापि न सिध्यति एव

अविरोध होनेसे विरोधवार्ता उच्छेद प्राप्त होगी। अतएव कार्यकारणके भेद और अभेदको भिन्नसत्ताक मानना होगा। सामानाधिकरण्य अनुभरद्वारा और पूर्वोक्त युक्तिद्वारा भेद-काही न्यूनसत्ताकत्व (कल्पितत्व) सिद्ध होता है। भिन्नसत्ताक होनेसेही भेद और अभेद विरुद्ध नही है। अतएव कार्य और उपादानकारणका औपाधिक भेद होता है, सत्ताभेद नहीं होता। सुतरा यदभिन्न कार्य उत्पन्न होता है वही कारण उपादान होता है। अभेदका अर्थ यह है कि पृथकसत्ताशून्यत्व। यदिभेद सत्तावच्छेदक होगा तो भिन्नका अभिन्नसत्ताकत्व विरूद्ध होगा। उपादान और उपदेयका भेद सत्तावच्छेदक नही होता। यदि उनका भेद सत्तावच्छेदक होगा तो मृद्घट ऐसा प्रत्यय नही होगा। अतएव उपादानद्वारा अवच्छिन्न जो अधिष्ठान-सत्ता, वही उपादेयद्वाराभी अवाच्छिन्न होती है। अतएव उपादान और उपादेयका भेद होनेसेभी उन दोनोका एकसत्ताकत्व होता है। इस प्रकारसे भेदका सत्ताशून्यत्व होनेसे कार्य और उपा-दानकारणका अनिर्वचनीय भेद होता है। कार्यका अनिर्वचनी-यत्व होनेसे, कारणसत्ता व्यतिरेकसे स्वतः सत्ताभाव होनेसेभी अनिर्वचनीय भेद जनित कार्य-कारणभाव उपपन्न होता है। अतएव कार्य और उसके भेदका सद्विलक्षणत्व (अनिर्वचनीयत्व) होने-सेही कारणतादात्म्य संभव होता है।

व्यादि रूपस्य (१)सर्गादिना नियमानन्दैकरस्य प्रथमप्रत्ययेन प्रकाशलाघरम प्रत्यये च तदभावप्रकाशनाय।

(न्यायतत्वविवरण=बृहदारण्यकभाष्य वार्तिकटीका अनुदित)

(८) शक्ति खण्डन स्थलमें उल्लिखित सिद्धान्तका प्रयोग।

मायावाद सिद्धान्तः—उल्लिखित सिद्धान्त प्रकृत विचार्य विषयमें कैसे प्रयुज्य है यह अब प्रदर्शित करते हैं। सर्वत्र सच्चित्स्वरूपका अन्वय होनेसे, मृदनुगत घटके समान विश्वके उपादानरूपसे सचित्स्वरूप सिद्ध होता है। सर्व पदार्थ चेतनमें स्थित होकर प्रतिभात होता है। चेतनस्थितिका अर्थ चेतनकी सत्तास्फूर्तिग्राहित्व है। सद्रूप अधिष्ठानका सद्भेद—अभावरूप तादात्म्यही 'सन्घट' ऐसे सामानाधिकरण्य अनुभवका विषय होता है (१०) कार्यप्रपंचमें सच्चित्स्वरूपका तादात्म्य अनुभूत होनेसे सचित्स्वरूप उसका उपादान है।

उपादान-उपादेय-भावके विचार द्वारा निरूपित हुवा कि, उपादानसे कार्य भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्न नहीं होता किन्तु उपादानसत्ताका भेदक न होकर कार्यपदार्थ उससे भेदयुक्त होता है। "भिन्नत्वे सति अभिन्नसत्ताकत्वं"। एतादृश स्थलमेंही तादात्म्य संभव होता है। कारण सत्ताका भेदक न होनेसे वह भेद अनिर्वचनीय होता है। अतएव यदि कार्य और उसका भेद सत्य हो, तो वह भेद सत्तावच्छेदक होनेसे कार्यकी सत्ता कारणसत्तासे भिन्न होगी। सुतराम् कारणाभिन्न–सत्ताकत्वरूप तादत्म्य अयुक्त होगा। अतएव उस उभयका (कार्य और तद्भेदका)

(१०) घटस्य वस्तुतोऽधिष्ठानसत्तया सम्बन्धाभावेऽपि तत्प्रतियोगिक वास्तवात् सत्तानवच्छेदकभेदवत्त्वरूपतादात्म्यसम्बन्धादधिष्ठानसत्तानवच्छेदकत्वेन सद्बुद्धिगोचरता

(अद्वैतदीपिकाविवरण)

अनिर्वचनीयत्व आवश्यक है । इससे यह सिद्धान्त प्राप्त हुआ कि सच्चिन्मात्रही यदि कार्यप्रपंचका उपादान होता है तो उसका कार्य और कार्यका भेद भी सत् होता है । परंतु कार्यकारणका कारणाभिन्न-सत्ताकत्वरूप जो अनुभवसिद्ध तादात्म्य उसके लिये कार्य में और उसके भेदमे अनिर्वचनीयत्व आवश्यक है । अनिर्वचनीयता की उपपत्ति देनेके लिये अनिर्वचनीय कुछभी कार्य-प्रपञ्चका उपादान मानना होगा । अनिर्वचनीय उपादान माननेसेही कार्य और तद्भेदमे अनिर्वचनीयत्व हो सकेगा । यह 'कुछ' ही अद्वैत वेदान्त शास्त्रमे माया नामसे प्रसिद्ध है । यह माया सर्व कार्यानुगत जाड्यरूप है । वह अनुभवसिद्ध अज्ञानसे पृथक पदार्थ नहीं है यह अन्यत्र विस्तारसे प्रतिपादित किया जायगा। (११) इसस्थलमे शक्तिके खण्डन रूपसे यह प्रतिपन्न हुआ कि चेतन शक्तियुक्त होकर जगद्रुपसे परिणत नही है । वह आनिर्वचनीय-कारण कार्यदृष्टिसे शक्तिरूप अभिहित होनेसेभी किंवा वह चेतनाश्रित अस्वतंत्र इस अर्थसे उसको शक्ति कहनेसेभी चेतनके दिकसे विचार करनेसे उसको चिच्छक्ति कह नही सकते, क्योंकि वह चेतनके स्वरूपभूत या समसत्ताक नहीं है, वह आनिर्वचनीय जड है । उसका कार्यवर्गभी जड है । जडप्रपंच चेतनके आत्मभूत या अंशभूत या परिणाम-

(११) उक्त अनिर्वचनीय पदार्थके स्वरूप निर्धारणके लिये अनुभवसिद्ध सर्वावस्थाके विश्लेषण द्वारा ऐसा एक अनुगत जडपदार्थ निर्दिष्ट होना आवश्यक है जो किसीकाभी कार्य नहीं है अथच विचित्र कार्य उत्पादनमें समर्थ तथा जिसके द्वारा चेतनरूप अधिष्ठानमें विकार संपादित नहीं होता, जिसद्वारा चेतनरूप अधिष्ठानका अखण्डत्व अव्याहत रहते हुए भी यहांपर खण्डप्रतिभास संभव होता है । इस अनुसंधान का प्रकार 'अद्वैत सिद्धान्त विवेचन' ग्रन्थमें प्रकटित होगा ।

रूप विशेषणभूत नही है। अजडका स्वरूप या गुण या धर्म या विकाररूप न होनेसे जडपदार्थ तत्त्वत चेतनके अन्तर्भूत नहीं है।

फ—कार्य प्रपचका द्विविध मूलउपादानः—

कार्य प्रपचका द्विविध उपादान होता है जड और चेतन। जड-अज्ञान जडप्रपचका परिणामी उपादान होता है और चेतन उसका सत्ताप्रद उपादान होता है। जो वस्तु जिसकेद्वारा अनुविद्ध होकर उत्पन्न होती है, वह व तु तदुपादानक होती है। कार्यवर्ग, चेतनसत्ता अनुविद्ध और जडानुविद्ध उत्पन्न होता है।अतएव उभयका उपादानत्व स्वीकार्य है। अज्ञान और चेतन इन उभयकाभी उपादान व लक्षण (*यदभिन्नकार्यमुत्पद्यते तत्कारणमुपादानम् अभेदश्च पृथक सत्ताशून्यत्व*) रहनेसे उपादानत्व आवश्यक है (१२) अधिष्ठान चेतनसत्ता, कारणरूप अज्ञानद्वारा, अवच्छिन्न होकर कार्यद्वाराभी अवच्छेद प्राप्त होती है। इस प्रकारसे अज्ञान और तत्कार्यका तादात्म्य (एक सत्ताकत्व) सिद्ध होता है। जड अज्ञानके आश्रयरूपसे चेतनका उपादानत्व होता है। उपादानत्वका अर्थ परमाणुके समान आरभकत्व किंवा प्रकृतिके समान परिणामित्व नहीं है किंतु विवर्त्तत्व है अर्थात् स्वस्वरूप अपरित्यागसे अनिर्वचनीय रूपान्तर प्राप्तिहै। अतएव चेतन आविकृत उपादान कारण या

---

(१२) (क)ब्रह्मामात्रकार्यत्वस्य प्रपच अभ्युपगम्यमान जडत्वस्य आकस्मिकत्वापत्त । सत्यानृतात्मक प्रपचस्य सत्यानृतोपादानकत्व नियमात।
(तत्त्वपदार्थविवेक-अमुद्रित)

(ख)कार्यस्य जडत्वात् कारण जडाशो अनुमेय।
(आरण्यवृत्तिसम्बन्धोक्ति=बृहदारण्यक भाष्यवार्तिक टीका अमुद्रित)

विवर्तकारण " स्वाभिन्न न्यूनसत्तार्थो विवर्तः।"

अविकृत होकर, चेतन परिणामिरूपसे उपादान नहीं है। यदि निरवयवका परिणाम हो तो संपूर्णकाही होगा। सर्वथा परिणाम होनेसे चेतनस्वरूपका अभाव प्रसंग होगा। सुतरां जगतकी अप्रसिद्धि होगी। निरवयवमें एक देशका अभाव होनेसे एकदेशिक परिणाम संभव नहीं है। 'आविद्यकस्तु देशो विवर्ततयैव संभवति'। परिणाम कहनेसे प्रश्न उत्पन्न होता है कि स्वस्वरूप स्थित होकरही चेतनका जगदाकारसे परिणाम होता है अथवा उसके विनाशसे? आद्यपक्षमें नामान्तरसे विवर्तवादही आश्रित है। लोकमें रज्वादि स्वरूपमें रहकर सर्पादि रूपान्तर आपत्तिका विवर्तत्व दृष्ट होता है। दध्यादि आकारसे परिणामी दुग्धादिमें क्षीरस्वरूप अदृष्ट है। द्वितीय पक्षमें जगदुपादान चेतनका असत्त्व होनेसे जगत्की स्थिति अनुपपन्न है। अतएव चेतन परिणामिरूपसे उपादान नहीं है। सावयव पदार्थके अवयवका उपचय-अपचयद्वारा संस्थानान्तर उत्पन्न हो सकता है। कार्य-कारण- संघातका जो अध्यक्ष साक्षी-चेतन वह निरवयव होनेसे उसके स्वभावकी विच्युति संभव नहीं है। अतएव उसके परिणामकी संभावना नहीं की जा सकती चेतनको परिणामिरूप-अन्यथाभाव संभव न होनेसे अथच चेतनसत्तासे जडकी सत्ता और मान होनेसे चेतनके दिकसे जडका विचार करें तो उसको चेतनका अन्यथाभाव कहना होगा। वह अन्यथाभाव तात्त्विक नहीं हो सकता, वह अतात्त्विक होगा। अज्ञानविना अतात्त्विक अन्यथाभावरूप विवर्त संभव नहीं है। परिणामवान अज्ञानविना चेतनका विभ्रमाधिष्ठा-

नत्व सिद्ध नही होता। चेतनरूप अधिष्ठान निरवयव है।जग सावयव दृष्ट होता है। निरवयवत्वका अविरोधी सावयवत्व हो है। यह सावयवत्व अज्ञानकृत होगा। अज्ञान कल्पित होनेसे सावयवत्व निरवयवत्वका व्याघात नही करता। अज्ञान अनिर्वचनी होनेसे उसका सबधभी अनिर्वाच्य है। अतएव वस्तुका निरवयवत्व निरोध प्राप्त नही होता। अनिर्वचनीय होनेसेही वह 'सावयव या 'निरवयव उसका कृत्स्न या आंशिक परिणाम इत्यादि विकल्प दोषसे अज्ञान दूषित नही होता। (१३)

परिणामिकाही सर्वत्र विकारित्व होता है, अधिष्ठानका नहीं। अतएव अधिष्ठानरूपसे सच्चित्स्वरूप उपादान है, परिणमिरूपसे अज्ञान उपादान है। अज्ञानका परिणाम होकरभी जगत् सत्य है ऐसा कहना उचित नही है। परिणामी उपादान कारणके समसत्ताक सत्यत्व परिणामका होता है। चेतनके समसत्ताकत्वका अभाव होनेसे चेतन जडका परिणामिकारण नहीं है। स्वसमानसत्ताक विकारका हेतु न होनेसे चेतनका निर्विकारत्व उपपन्न होता है। (१४)

---

(१३) तदेव भेदाभेदादिप्रपञ्च कार्यकारणभावस्य दुर्निरूपत्वात्, स्वरूपतापि विचारागोचरत्वात्, अनाद्यविद्याविलसित सकलोऽयं प्रपञ्च।
(तत्त्वप्रदीपिका–चित्सुखी)

(१४) परिणामोऽपि वस्तुन सर्वात्मना एकदेशेन वा, आद्ये अनन्तरक्षण पूर्वरूप निवृत्ते न तस्य परिणाम, द्वितीये स एकदेशस्तस्माद्भिन्नश्चेत न वस्तुन परिणाम, न ह्यन्यस्मिन् परिणममाने अन्य परिणमते, अभेदे सर्वात्मना परिणामापात, भिन्नाभिन्न एकदेशो वस्तुत इतिचेत्, न, भेदाभेद विरोधित्वात्, अविरोध एकदेशस्यैकदादीमात्रत्व स्यात, भेदाभेद सत्यपि अविरोधात तस्यैव सर्वात्मना परिणामापत्ते, तस्मा मायामयी सन्दृश्यता, निष्प्रपञ्चतातु तात्त्विकात सिद्धम॥ (शास्त्रदर्पण)

(ब) सिद्धान्तरीति प्रदर्शन ।

उल्लिखित विचारद्वारा सिद्ध हुआ कि, अद्वैतसिद्धान्त प्रतिपादन उद्देशसे ग्रंथमे जैसी रीति अवलम्बन की वह सर्वथा समीचीन है । ज्ञान और ज्ञेय इस द्विविध पदार्थमे ज्ञान स्वप्रकाश सत्स्वरूप है और ज्ञेयपादार्थ सत्स्वरूप ज्ञानके साथ तादात्म्यप्राप्त उसका अधीन (सत्तास्फूर्तिकेलिये ज्ञानस्वरूपका सापेक्ष) है ऐसा प्रतिपादन करनेके पश्चात् ज्ञेयप्रपंचका मिथ्यात्व (अनिर्वचनीयत्व) प्रदर्शित किया । ज्ञेयका मिथ्यात्व प्रतिपन्न होनेसे वह जिसके सत्तासे सत्तावान है तथा जिसके भानसे भासित है उस स्वप्रकाश अधिष्ठानका सत्यत्व और अधिष्ठान व्यतिरिक्त सत्य पदार्थका परिशेष न रहनेसे, उसका त्रिविधपरिच्छेद–राहित्यरूप अद्वैतत्व सिद्धान्तित हुआ, (१५)

जड और चेतन इस उभयमे यदि शक्ति–शक्तिमद्भाव, गुणगुणि–आदि-भाव या अध्यस्त-अधिष्ठान–भाव न हो तो वे परस्परभिन्न निरपेक्ष पदार्थ होनेसे द्वैतवाद सिद्ध होगा । अद्वैतवाद सिद्ध होनेके लिये एकमे अपरका अन्तर्भाव प्रदर्शित होना आवश्यक है । इनमेसे चेतन यदि जडका अन्तर्भूत उसका परिणामभूत हो और वह जड यदि एक हो तो जडाद्वैतवाद सिद्ध होगा । चेतनाद्वैतवाद प्रतिपादित होनेको लिये चेतनमे (स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूपमे) जडका अन्तर्भाव प्रदर्शन करना होगा। यह अन्तर्भाव त्रिविधरुपसे हो सकताः–जडपदार्थ चेतनका शक्तिरूप या शक्तिव्यतिरेकसे गुणादिकी समान चेतनका आश्रितरूप

(१५) तात्विकद्वैतविधुर सद्वस्तु अद्वैतं । (वेदान्तकौमुदी-अमुद्रित)

या रज्जुमे सर्पादिके समान चेतनमे अध्यस्तरूप । इनमेसे प्रथम और द्वितीय प्रकारानुसार विशिष्टाद्वैतवाद (वास्तव विशेषण-सहित) सिद्ध होगा, तृतीयरीतिसे केवलाद्वैतवाद (अवास्तव विशेषणयुक्त) प्रतिष्ठित होगा । इस प्रबन्धमे तृतीयरीति यथाकथंचित प्रदर्शित करनेका प्रयास कीया है । चेतनका अनात्मसम्भेदावभास अख्याति नही किम्वा अन्यथाख्याति भी नही अथवा आत्मख्यातिभी नही है ; अतएव चैतन्यकाही स्वाविद्याविवर्तमान मिथ्या-वस्तुसम्भेदावभासलक्षण अनिर्वचनीयख्याति अस्वीकृत होनेसे चेतन और अचेतनका अत्यन्तविविक्तावभासही होगा नाकि संभेदावभास
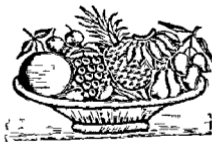
उपसंहार

मूलतत्त्वानुसधानमे प्रवृत्त होकर भारतीय दार्शनिक लोक विविध विचित्र सिद्धातमे उपनीत हुए है। इस प्रकार सिद्धातभेद होनेका हेतु क्या है? यदि तत्त्व कुछ रहे तो उसका अस्तित्व बुद्धिके सापेक्ष नही होगा यह निर्विवाद है, तथापि "यदि कुछ रहे" इस अनिश्चिति-अवस्थामे विवेकीका (विचारवान मननशील व्यक्तिका) मन सन्तोषप्राप्त नही हो सकता। उनका मन तत्त्वस्वरूपका निश्चय करनेमे प्रयास करता है। यह निश्चय बुद्धिवृत्तिके अधीन है और बुद्धि स्वभावत परिणामशील है, एकरस नित्य नही है। अतएव सस्कारभेद और शिक्षाभेदसे बुद्धिभिन्नता होनेसे तन्मूलक विचारभेद अवश्यभावी है। यद्यपि तर्कका प्रसार साधारण कार्यकारणभावका नियमके अवलबनपर होता है और इसी हेतुसे परस्परमे विचार सभव होता है तथापि उस नियमका प्रयोग भिन्न भिन्न होनेसे सिद्धातका भेद हो जाता है। तत्त्वका निर्णय बुद्धिके अधीन होनेसे और यथार्थ निश्चयके लिये मानवको बुद्धि व्यतिरिक्त अपर कोई साधन न रहनेसे तथा जहापर बुद्धिवृत्ति शान्त है वहापर निर्धारणका सामर्थ्य न रहनेसे और उस अवस्थासे व्युत्थित होकर स्व स्व सस्कारभेदसे शिक्षाभेदसे उक्त अवस्थाकी उपपत्ति विभिन्नरूपसे काल्पित होनेसे बुद्धि-भिन्नताके कारण (या दृष्टिभेदसे या रुचिभेदसे) सिद्धातभेद होना स्वाभाविक है।

अब तत्त्वविषयक भारतीय विभिन्न सिद्धात वर्णित होता है। (१) जगत् नित्य है, 'न कदाचित् अनीदृश

जगत्' (सृष्टिप्रलय विहीन) यह कोई कोई मीमांसक मानते है। (२) कारण विनाही कार्य होता है, यह स्वभाववादी चार्वाकका मत है। (३) शून्यही पूर्व पूर्व अलीक व सनावशसे विचित्र प्रपञ्चाकारसे प्राथित होता है यह शून्यवादी बौद्धोंका आभिमत है। शून्यवादिमतमे अभावही कारण है, स्वभाववादमे अभाव या भाव कारण नही है। (४) वसन्तादि कालमेही नियम पूर्वक कार्यविशेष दृष्ट होनेसे कालही कारण है यह ज्योतिर्विदोंका मत है। (५) क्षणिक विज्ञानमे जगत् कल्पित है यह विज्ञान मात्र तत्त्ववादी बौद्धोंका (योगाचार सम्प्रदायका) अभिप्राय है। (६) **परमाणुवादः**—इस वादमे तिन भेद हे —(क) पाद्गलिक कार्य (जैनसम्मत) (ख) संघातवाद (सौत्रान्तिक बौद्धाभिमत परमाणुपुञ्जसे भिन्न अवयवी नही है) (ग) परमाणु आरम्भवाद (न्यायवैशेषिकसम्मत अवयवअवयवीके भिन्नतावाद)। सूक्ष्म तन्त्वादिसे स्थूल पटादिकी उत्पत्ति दृष्ट होनेसे सूक्ष्म स्थूलका कारण है। इसप्रकार तन्त्वादिकाभी तदवयव सूक्ष्म कारण है। इसप्रकारसे जिससे अन्य सूक्ष्म संभव नही है वह निरवयव परमाणुही जगतका मूलकारण है।

(७) **परिणामवाद**—इसवादमे तिन भेद है।—(१) प्रकृतिपरिणाम। (२) शब्दपरिणाम। (३) चेतनपरिणाम। (१) त्रिगुणात्मक (प्रकाशशील सत्त्व, क्रियाशील रज, स्थिति शील तम) जगतरूप कार्यके सदृश त्रिगुणात्मक प्रकृतिही कारण है यह सांख्यादिको अभिमत है। (२) पूर्वपरादिविभागरहित अनुत्पन्न अविनाशी शब्दमय ब्रह्मका परिणाम यह जगत यह वैयाकरणलोगोंका मत है (३) तृतीयमतमे अवान्तर भेद है

यथा —विशिष्टाद्वैतवाद (रामानुजीय और शैव), शाक्तिवि-शिष्टाद्वैतवाद (शाक्त सम्प्रदाय), द्वैताद्वैतवाद (भास्कर और निम्बार्क) अचिंत्य भेदाभेदवाद (गौडीय वैष्णव), शुद्धाद्वैतवाद (वल्लभीय)।

विवर्त्तवाद (केवलाद्वैतवाद)—एकही अद्वितीय असृष्टि सकलोपाधिपरिशुद्ध ब्रह्म अनादि अविद्यावशसे सद्वितीयके समान अवभासमान होता है, वह परमार्थतःनिधर्मक है; सधर्मक प्रतिभास-जीवत्व जगत्त्व ईश्वरत्व मिथ्या है (प्रथम क्रोडपत्र द्रष्टव्य) यह अद्वैतवैदान्तिक सिद्धान्त है।

यह सिद्धांत, वैदान्तिक दार्शनिक पद्धतिसे इस प्रबन्धमे यत्-किंचित् प्रदर्शित किया गया। विचारद्वारा निष्पन्न हुआ कि चेन्मात्रस्वरूप साक्षीके साथ तादात्म्यप्राप्त होकर अशेष साक्ष्यकी प्रतीति होती है। ऐसा सिद्ध होनेसे प्रकृति परमाणु आदि जड-कारणवाद निरस्त हुआ।"न च स्वभावत विशिष्ट देशकालनिमित्तो-पादानादिति। स्वभावो नामान्यानपेक्ष तेनापेक्षैवानुपपन्ना कुतो नियमसभव"। ज्ञानका नित्यत्व सिद्ध होनेसे क्षणिक विज्ञान-वाद और शून्यवाद खण्डित हुआ। अभाव और शब्दका अनुगम जगतमे गृहीत न होनेसे वे जगतके मूल उपादान नहीं है। अधिष्ठान सद्रूप अद्वितीय आत्मचैतन्यही सद्बुद्धिगोचर होता है, वही वास्तव स्वरूप है, तद्व्यतिरेकसे दृश्यका स्वत सत्ताभाव होनेसे वही सर्वाभेद है, सुतरा वैष्णवादि सम्मत भेदाभेदवादभी तिरस्कृत हुआ। इस सर्वानुस्यूत एक सचित्स्वरूप ज्ञेयके दिकसे विचारित होनेसे वह मूलतत्त्वरूपसे अभिहित होता है। अतएव ज्ञानस्वरूप सत्यस्वरूप अनन्तस्वरूपही परिदृश्यमान विश्वप्रपचका मूलतत्त्व है। इति ॥

क्रोडपत्र [प्रथम] ।

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति यह अवस्थात्रय सर्वानुभवसिद्ध है । भिन्न भिन्न अवस्थाका अनुभव तभी संभव है जब इन सबमे व्याप्त एक साक्षिरूप प्रकाश रहेगा । चैतन्यकी अनुगति न रहनेसे अवस्था सिद्धिही नही होगी । उन अवस्थाके भावाभावसाधक व्यतिरेक अवस्थाचत्ताही प्रसिद्ध नहीं होगी । स्वरूपका अभाव स्वविकारा भाव स्वद्वारा दृष्ट होना शक्य नही है । स्वयं नष्ट होकर कैसे नाशको अवगत होगा ? अथच भाव और अभाव एकद्वारा वेद्य होत है यह नियम है । अतएव उनके भावाभावकी सिद्धि तद्व्यतिरिक्त साक्षीद्वारा होती है यह मानना होगा । उस सिद्धिप्रद साक्षी व्यतिरिक्त अपर स्वीकार करनेसे उसकाभी साधकान्तर दूसरा इस रीतिसे अनवस्था होगी। अनवस्था वस्तुसत्ता की विघ्नकारक होती है। ऐसा साधकन्तर अनुभूतभी नहीं है । उस सिद्धिप्रदका अभाव सिद्ध नही हो सकता । सर्व भावाभाव विभाग बोद्ध-अधीन सिद्ध होनेसे साधक बोद्धाका अभाव अन्यत सिद्ध नहीं हो सकता । स्वद्वाराभी वह सिद्ध नही हो सकता, क्योंकि स्वअभावके साधकरूपसे अपनी अवस्थिति आवश्यक है । व्यभिचारि अवस्थाका भावाभाव साधक अव्यभिचारी होगा । सर्वका व्यभिचारित्व होनेसे व्यभिचारभी सिद्ध नहीं होगा । एकका अव्यभिचारित्व होनेसे सर्वव्यभिचारिता नहीं होगी । उस अव्यभिचारिकी स्वत सिद्धि आवश्यक है । विकारोंके उत्पत्ति स्थिति और नाशमे जो अवगत होकरही वर्तमान रहता है उस अविनश्वर साक्षिप्रकाशके सिद्धिमे अपरकी अपेक्षा न रहनेसे वह स्वत सिद्ध है । सदा असंदिग्ध अविपर्यस्त साक्षिकी नित्य-साक्षात्-कारता तभी सभव है यदि वह अनागन्तुक प्रकाश होगा । यह स्वप्रकाश ज्ञानही ज्ञेयदृष्टिसे प्रकाशक

यो प्रकाश्यके ग्राहकरूपसे प्रतिभात है, कभीभी ग्राह्य नहीं होता। वह प्रत्यगात्माही सर्वागमापायके अवाधिरूपसे सर्वद्रष्टा सर्वसाक्षी होनेसे सर्वप्रकार प्रपंच-विलक्षण है। इसप्रकारसे जीवानुभूत अवस्थाके विचारद्वारा जीवत्वरहित अवस्थारहित साक्षिप्रकाश सिद्ध होता है। यह प्रकाश भेदरहित है। भेद वेद्य होनेसे साक्षीका धर्म नहीं है। साक्ष्यधर्म साक्षिगत नहीं हो सकता, अन्यथा उसका साक्ष्यत्वहीका लोप हो जायगा पक्षान्तरमे प्रकाशकाभी वेद्यत्व प्रसंग होगा। अतएव वह प्रकाश अखंड है। वह निर्विकार है। विक्रियासमूह अनुभाव्य होनेसे वह रूपादिके समान अनुभूतिका (साक्षिप्रकाशका) धर्म नहीं होगा। अनुभूय-मान न होकरभी विकारसमूह स्वयंभात है ऐसा कहना उचित नहीं है। ऐसा होनेसे वह स्वयंप्रकाश चेतनसे भिन्न नहीं होगा, उसका विकारत्वही असिद्ध होगा। अननुभूयमान कैसे स्वयंप्रभ होगा? "अन्तर्भावे तुबाह्यानां चित्स्वभावो निरंजनः। बहिर्भावेतु बाह्यत्वात् चित्स्वभावो निरंजनः"॥ अतएव वह अखंड प्रकाश विकाररहित है। जो अविकारि वह अशेष विशेष विहीन (निर्विशेष) होता है। जो कोई विशेषके साथ कदाचित् युक्त होता है वह विकृत होता है। जो एक अविक्रिय प्रकाशस्वभाव है उसके तद्विपरीत आकाररूपसे अवभास स्वाभाविक नहीं हैं।

जगत्त्व—वह प्रकाशही ज्ञेयप्रपंचके साथ संबंधयुक्त होकर जगतरूपसे अभिहित होता है। संबंध द्विविध है, साक्षात् (मूल) और परंपरा। साक्षात् संबंध द्विविध, संयोग और तादात्म्य। विषय-विषयिभाव और विशेष्यविशेषणादिसंबंध उक्त द्विविध संबंध मूलक होता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष होगा। जडचेतनका

संबंध संयोगरूप नहीं है क्योंकि साक्षिप्रकाश निरवयव है। उस निष्प्रदेश चेतनमें 'स्वाभावसमानदेश' संयोग (जहांपर संयोग रहता है उस आश्रयमेंही अवच्छेदक भेदमें संयोगका अभाव रहता है) हो नहीं सकता। ज्ञेयप्रपंच उस प्रकाशसे अप्राप्त या स्वतंत्र नहीं है। स्वतंत्र और अप्राप्त द्रव्यद्वयका संबंध होनेसे वह संयोग पदवाच्य होता है। ज्ञानस्वरूपसे ज्ञेय पदार्थ स्वतंत्र और अप्राप्त न होनेसे उभयका संबंध संयोग नहीं है अवशेष ज्ञान और ज्ञेयका तादात्म्य मानना होगा। तादात्म्य होनेसेही ज्ञेयपदार्थ ज्ञानका सापेक्ष है, ज्ञान व्यतिरेकसे ज्ञेयकी उपलब्धि नहीं होती। चैतन्यके विषयतादात्म्यविना अपरोक्षरूपसे उसका अवभास अयुक्त है। जडप्रपंच वद्य होनेसे अपरके विशेषण रूपसे उसकी सिद्धि होती है, स्वतंत्ररूपसे नहीं। वह अपर, ज्ञानस्वरूप है। अथच ज्ञानस्वरूपका अजडत्व और ज्ञेयप्रपंचके जडत्वसे विलक्षण होनेके कारण इन उभयका तादात्म्य संभव नहीं है। औरभी चेतन परिणामरहित होनेसे जडके साथ उसका यथार्थ तादात्म्य संभव नहीं है। अवशेष जडचेतनका आध्यासिक तादात्म्य मानना होगा। ऐसा संबंध भ्रान्तिस्थलमें प्रसिद्ध है। संबंधविना प्रकाश्य प्रकाशक भाव अयुक्त होनेसे तथा यथार्थ संबंध उपपन्न न होनेसे, आध्यासिक संबंध मानना होगा। आध्यासिक तादात्म्य रूप संबंधके स्वीकारविना जड चेतनके सामानाधिकरण्यमें अभेद प्रतीतिकी उपपत्ति नहीं दी जा सकती, जड और चेतनका वास्तव अभेद असिद्ध है। आध्यासिक तादात्म्यस्थलमें अध्यस्त मिथ्या होता है। अधिष्ठान स्वरूपत सत्य होता है किंतु संबंधिरूपसे मिथ्या होता है। अतएव जडरहित स्वप्रकाश अखंडतत्त्वका,

ज्ञेयसहित जगद्भाव सत्य नहीं है ।

जीवत्व—जाग्रतस्वप्न सुषुप्तिके विचारद्वारा द्विविध पदार्थ सिद्ध होता है, विषय और विषयी । विषयका त्रिविध भेद अनुभूत होता है । जाग्रदवस्थामें स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीर (अनित्य ज्ञान और संकल्पादिका आश्रय, आश्रयविना संस्कार और स्मृति आदिकी उपपत्ति नहीं होती) और अज्ञान अनुभूत होता है । स्वप्नवस्थामें स्थूलशरीर अनुभवगम्य न होनेसेभी संकल्पादिकी और अज्ञानकी प्रतीति रहती है (संकल्पादि कादाचित्क होनेसे कार्य है, कार्य होनेसे उस जडका कारण अनुगत जड होगा, वही अज्ञान है)। सुषुप्तिमें स्थूल सूक्ष्म की प्रतीति नहीं है अथच अज्ञान अनुभूत होता है । ऐसे अनुभव विना व्युत्थित पुरुषको " न किंचिदवेदिष " ऐसी स्मृति न होती । वह ज्ञानाभावका अनुमान नहीं है यह अन्यत्र प्रतिपादित होगा। इस प्रकारसे विषयका उक्त त्रिविध भेद अनुभूत होता है । समाधि अभ्यासका अनुभवभी उक्त सिद्धांतके प्रतिकूल नहीं है । एकाग्रता-अभ्यासकालमें प्रथमतः स्थूल-विषयक विक्षेप पश्चात् उस विक्षेपकी शिथिलता और सूक्ष्म संकल्पादिकी आवृत्ति तदनतर उसका अभिभव पश्चात् शून्यभावप्राप्ति उसके अनन्तर इस आवरणभावका तिरस्कार होता है । जीवका ऐसा कोई अवस्था नहीं होता जहांपर चतुर्थ उपाधिकी प्रतीति हो। अतएव सिद्ध होता कि अखण्ड स्वप्रकाश साक्षिप्रकाशके साथ त्रिविध ज्ञेयके (स्थूल सूक्ष्म और अज्ञान) संबंध जनित जीवभाव अनुभूत होता है । ज्ञान और ज्ञेयका संबंध आध्यासिक होनेसे चेतनका जीवभाव मिथ्या है ।

ईश्वरत्व—अखिलप्रपञ्च एकही चेतनस्वरूपके साथ तादात्म्य प्राप्त होकर प्रतिभात होनेसे कार्यजगतका निमित्तकारणरूप ईश्वर सिद्ध नही होता। (कार्यसे सर्वथा भिन्न निमित्तकारण होता है)। विरुद्धस्वभाव जड (ज्ञेयप्रपञ्च) और चेतनका वास्तव तादात्म्य संभव न होनेसे जगतका तात्त्विक उपादान रूपसे ईश्वर सिद्ध नही होता। चेतनका शक्तियुक्तता और परिणाम निषिद्ध होनेसे जगतका वास्तव अभिन्न निमित्तोपादानरूप चेतन (ईश्वर) सिद्ध नही होता। अतएव ईश्वरभावका अपारमार्थिकत्व प्रतिपन्न होता है। ऐसा पदार्थ परमार्थत परमार्थतत्त्वका स्वरूपभूत नहीं होता किन्तु परमार्थचेतनाधिष्ठित अज्ञानमूलक होता है। निरंश निष्क्रियतत्त्वमे कुछ प्रतीत होना हो तो औपाधिक और आध्यासिक होना उचित है। ऐसा होनेको लिये अज्ञान (आवरणाविक्षेपात्मक) आवश्यक है। इसप्रकार ईश्वरभाव मान लेनेसे उसका अस्तित्व अज्ञानस्थिति अधीन सिद्ध होता, इस हेतुसे ईश्वरत्वका मिथ्यात्व होता है। "मानना" कहनेका तात्पर्य यह है कि, अद्वैत वैदान्तिक विचारानुसार साक्षिरूप नित्य स्वप्रकाशज्ञान सिद्ध होनेसेभी उसका ईश्वरत्व निश्चय करना कठिन है। अज्ञान, निष्क्रिय साक्षिप्रकाशका विषय तथा मनोवृत्तिका अविषय होनेसे उसका (अज्ञानका) संख्या सदाही अनिर्धारित रहता है। अतएव अज्ञानका एकत्वान्तर्गत बहुत्व निर्णय करनेकी उपाय न रहनेसे तन्मूलक जीवेश्वरभावका स्वरूप निश्चयीकृत नही होता। (इसी हेतुसेही जीवेश्वरविषयक बहुविध कल्पना वेदान्तशास्त्रमे उपलब्ध होता है, इस विषयक मतभेद सिद्धान्तलेश ग्रंथमे द्रष्टव्य)।

जब अखण्डचेतन जीवदृष्टिसे (व्याष्टिअभिमानीके दृष्टिसे) समष्टिरूप (सोपाधिक) कल्पित होता है तब वह ईश्वररूपसे विवेचित होता है। " कल्पित " कहनेका तात्पर्य यह है कि, जैसा जीवाभिमान अनुभवसिद्ध है वैसा ईश्वर अनुभवसिद्ध नहीं है। अर्थात् समष्टिअभिमानी कोई है यह जीवके अनुभवका विषय नहीं है। चेतनका व्यापकत्व विचारसिद्ध होनेसेभी समष्टिअभिमानीका अस्तित्व निर्णय करणेका उपाय नहीं है। तोभी अखंड निर्विशेष चेतनका ईश्वरभाव ज्ञेयसंबंधमूलक होगा। संबंध आध्यासिक होनेसे उसका संबंधीभी संबंधिस्वरूपसे सत्य नहीं है। अतएव ईश्वरत्व स.य नहीं है।

क्रोडपत्र [द्वितीय]

ऐसी जिज्ञासा होगी कि तत्त्वविज्ञानशास्त्र (दर्शनशास्त्र) अध्ययनसे क्या फल होता है ? अतएव फल सबधमे कहते है। इस विद्याके अनुशीलनद्वारा तत्त्वविषयक नानाविध मतवादका परिचय होता है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है, विचार करनेकी कुशलता प्राप्त होती हे। दार्शनिक विचारद्वारा कट्टरता (dogmatism) धर्मध्वजिता धर्मान्धता तिरस्कृत होती है, अन्तत यह सब बुद्धिदोषको तिरस्कार करनेकी योग्यता उक्त विचारका यथेष्ट है। विचारप्रसूत प्रज्ञाद्वारा श्रद्धान्धता और अविचार-मूलक भौतिक लाघव होताहे, लौकिक और धार्मिक नानाविध अन्धपस्कार आलिंगनमूलक विविध विचित्र अभावबोधसे (feeling of want) अव्याहति होती हे। विचारद्वारा तत्त्वनिर्णय होता हे और विभिन्न मतोंका समन्वय बोधभी होता हे। समन्वयबोध बिनाभी तत्त्वविषयक निश्चय देखा जाता है। तत्त्वनिश्चय नहीं होता ऐसेभी बहुत स्थल दृष्ट है। आग्रह परित्यागपूर्वक विभिन्न सप्रदायके प्रखर अथके सुगभीर विचारके अनन्तर तत्त्वविषयक निश्चय शिथिल होता है; किंवा तत्त्वविषयमे अनिश्चय या सशय होता है, ऐसा दृष्टात विरल नही है।

जो लोक साधनाभ्यासी है उनके लिये दार्शनिक विचार अधिक फलप्रद हे। मानवमन स्वभावत मानसिक मलीनता, चचलता और दुर्बलताके कारण नानाविध दु खभोग करता है। यद्यपि दु खका मूलकारण निर्देश करना कठिन हे और इस विषयमे धार्मिक और दार्शनिक सप्रदायमे महान् मतविरोध है तथापि अस्मदादिके अनुभवानुसार उपरोक्त कारण निर्णय असगत नहीं है।

इंद्रियद्वारा विषयभोग, वह विषय अपगत होनेसे उसके गुणानु-संधानद्वारा पुनः पुनः भावना, तज्जनित तद्विषयक चित्तमे दृढवासना और उसकी स्मृति. ये सब मानसिक अशान्तिके उत्पादक है। यद्यपि दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति संभव नही है तथापि विरोधि अभ्यासद्वारा उक्त त्रयकी शिथिलता संपादित होनेसे दुःखकी उपशम हो सकती है। मलीनताके विरोधी है शुद्ध-भावना, चंचलताका तिरस्कारक एकतत्त्वाभ्यास और दुर्बलताका विरोधी दृढ संकल्पाभ्यास है। कोई विषयमे आदरपूर्वक पुनः पुनः चिन्तन करते हुए स्वार्थबुद्धिके दृढतासे तद्विषयक आसक्ति वर्धित होती है। समानविषयक संस्कारका अनेकत्व होनेसे संस्कार दृढ होता है। अतएव विरोधी भावनाभ्यास (प्रतिपक्षभावना) विषयगत आसक्तिके तिरस्कारका उपाय है। मनोगत सूक्ष्म दोषोके आविस्कृति और उसकी तिरस्कृति ध्यानाभ्यास द्वारा साधित होतो है। ध्यान व्यतिरिक्त अपर साधनमे प्रवृत्त होनेसे सुप्त या उद्बुद्ध संस्कारके अनुसंधान और परिचय तथा उनके अभिभवका प्रयास नही हो सकता। ध्यानका फलरूपसे चित्तवृत्तिकी द्विविध अवस्था होती है:--एक एकाग्रावस्था (चित्तवृत्ति किंचित्-ज्ञेययान), अपर निरोधावस्था (चित्तवृत्ति अज्ञेयमान)। प्रथमावस्थामे चित्तकी वृत्ति एकाग्र होकर ध्येयार्थमात्रग्राहि होती है। वह विषयान्तर वासनाभिभवद्वारा ध्येयसाक्षात्कारका हेतु होती है। अतएव तदवस्थामे भिन्न भिन्न पुरुषोको अभ्यस्त भावनाके अनुसार, कभी कभी संस्कारोंके उद्बोध होनेसे विभिन्न अनुभव होते है। एकही पुरूषकी भावना या संस्कारका उद्बोधके अनुसार भिन्न भिन्न कालमे भिन्न भिन्न अनुभव होता है। अपर अवस्थामे अर्थात् निरोधावस्थामे

चित्त संस्कारमात्ररूपसे प्रशान्तवाहि होती है । इस निरोधयोगमे कुछ ज्ञात नही होता ।

ध्यान और विचार यह दोनो अभ्यस्त होना आवश्यक है । विचारविना मननशील व्यक्तिका तत्त्वविषयक जिज्ञासा उपशमप्राप्त नही होता । ध्यान व्यतिरिक्त अपर साधनसे चञ्चलतादि नानाविध दोषोंकी तिरस्कार नही होता । विचार जनित जो निर्भीकता और उदारता वह केवल ध्यानशील व्यक्तिके प्राप्ति होना कठिन है । केवल विचार-अभ्यासीको सहजत चित्तस्थिरता-लाभ दुष्कर है । विचारसहकारसे ध्यानाभ्यास (यथा चित्ततरंगसहित आपनेको महाशून्यमे मग्न या प्रविलय करनेका प्रयास) द्वारा उक्त त्रिविध दोषकी अभिभव होनेसे मनकी स्वस्थता सपन्न होती है । संस्कारभेदसे और अभ्यास तारतम्यसे फलभेद होता है ।

स्वाभाविक अनुभवानुसारसे जीवितकालीन फलसंबंधने सामान्यत. ऐसे कुछ कह सकते है, नियतफलकी प्रतिज्ञा नहीं कर सकते ।

भारतीय बहु दर्शनशास्त्रमे तत्त्वविषयक विचारके या साधनके फलरूपसे जीवितकालीन या मरणानन्तर दु खनिवृत्ति रूप नियत–फल प्रतिज्ञात है । परतु ऐसी प्रतिज्ञा प्रदान करना समीचीन नही है । वह अनुभवविरुद्ध और युक्तिविगर्हित है । जीवानुभूत अवस्थाओंमे सुषुप्ति और मूर्च्छामे दुःखोपलब्धि नही रहती । निर्विकल्प समाधिमेभी ऐसा होता है । सविकल्प समाधि और ध्यानावस्थामे तन्मयता होनेसे, दु.खप्रद चचलतासे अव्याहति पायी

जाती है । ऐसे अवस्था–प्राप्तिकी चिरंतनता संभावित करना कठिन होनेसे आत्यन्तिक दु खनिवृत्ति कल्पना नही कर सकते । अपर अवस्थामे रागद्वेष मूलक व्यवहार होतेही रहता है । बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति या निवृत्ति रागद्वेषमूलक है । रागद्वेष–अभाव-जनित व्यवहार सभव नहीं है । अभाव (रागद्वेषाभाव) व्यवहारका प्रवर्तक नही है । अभाव स्वतः निर्विशेष होनेसे वह भिन्न भिन्न विशेष व्यवहारका प्रयोजक नही हो सकता । धर्मिरूप मन रहते हुए धर्मरूप रागद्वेषादिका अत्यंत उच्छेद सभव नहीं है। सर्व व्यवहार अभिमान मूलक है । स्थूल सूक्ष्म शरीरमे अभिमान विना जाग्रत-अवस्थाकी प्रसिद्धि नही हो सकती । नानाविध सूक्ष्म तरंगके साथ तादात्म्याभिमान विना स्वप्नदर्शन संभव नहीं है । जहापर अभिमानाभाव है वहापर (सुपुप्त्यादि अवस्थामे) व्यवहारकाभी अभाव होता है । अतएव संपूर्ण व्यवहार अहं-मम-अभिमानमूलक रागद्वेषकृत होनेसे मानसिक तरङ्गका तारतम्य अवश्य होगा । मन स्वभावतः विकारी होनेसे तथा बुद्धिपूर्वक अशेष व्यवहार प्रतिकूल-अनुकूल-बोधजनित होनेसे मनकी एकरसता रह नही सकती ।

उल्लिखित विचारद्वारा प्रतिपन्न हुआकि जीवित-अवस्थामे दु.ख-निवृत्ति संभावना करना कठिन है । मृत्युके पश्चात् दु.ख-निवृत्ति या सुखप्राप्ति होता है ऐसा अनुमान करनेके लिये कोई योग्य हेतु या व्याप्ति नही है । यह विषय अन्यत्र प्रतिपादन करेंगे । शब्दप्रमाणद्वाराभी ऐसी निर्णय संभव नही है । शास्त्रकारलोग और तथाकथित (so-called) योगसिद्धलोग [एकसंप्रदायगत

तथा विभिन्नसंप्रदायका] इस विषयमें अतिशय विप्रतिपन्न है। अतएव संभावना कीया जाता कि, परम्परविरुद्ध मतोंमें कोइ एकमात्र सत्य होगा किंवा सर्व मिथ्या होगा अथवा मोक्ष या स्वर्ग ये सब अवस्तु है, तद्प्राप्ति-विषयक धारणा परंपराप्राप्त श्रद्धाजडता या मनोरथमात्र है। जोभी, मृत्युके पश्चात् क्या होता है ? जीव रहता है या नहीं ? यदि रहेगा तो किस हेतुसे उसकी कैसी गति होगी ? इत्यादि विषय ग्रंथकर्ता को विदित नहीं, सुतराम् उसका परिचय या प्रतिज्ञा प्रदान करना ग्रंथकर्ताका आयत्त नहीं है। इति ॥
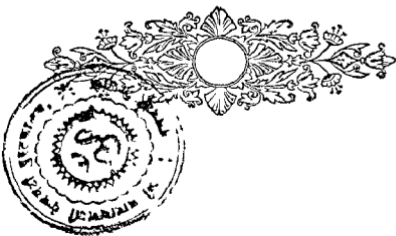
शुद्धिपत्र

पृष्ठ—	पंक्ति—	अशुद्ध	शुद्ध
२	१	तत्व	तत्त्व
,,	१७	तात्पर्य	तात्पर्य
५	१०	उघ्दृत	उद्धृत
७	१५	differences	differences,
९	१३	सद्रुप	सद्रूप
,,	१९	उत्पत्ति	उत्पत्ति
२१	१९	वृत्त्यवच्छिन्न	वृत्त्यवच्छिन्न
२२	३	व्यवहाका	व्यवहारका
,,	१९	अनुमानगोचस्य	अनुमानगोचरस्य
२५	१२	तवेदमिष्ठ	तवेदमिष्ट
,,	१३	पृष्ठस्य	पृष्टस्य
२७	२०	विधायोग्यत्व	बाधायोग्यत्व
,,	,,	व्यावृत्तित्वा	व्यावृत्तित्व,
३१	२	संयोग।	संयोग-
३७	१८	सतूसदिति	सत्सदिति
३८	१४	ब्रह्माणि	ब्रह्मणि
३९	१७	सत्नेतनंका	सत्‌चेतनका
४१	२	निरोक्षण	निरीक्षण
४५	६	यद	यह
,,	९	प्रष्ठव्य	प्रष्टव्य
४८	२०	स्मृत्वा	स्मृत्या
,,	२१	अनपक्षनात्	अनपेक्षनात्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५९	१९	निर्वचनही	निर्वचनीय
६१	२	तादात्म्यावर्गाहि	तादात्म्यावगाहि
६३	२१	धिका	धका
६४	१४	प्रत्यय—	प्रत्यय
६८	२०	लोष्ट्रादिमे	लोष्टादिमे
७१	२१	रजतावि	रजताधि
८६	२३	मिथ्यऽ	मिथ्याऽ
८८	१	समसताक	समसत्ताक
,,	५	अवभासही	अवभास
,,	१५	सता	सत्ता
९२	२२	संक्षेपशाररिक	सक्षेपशारीरक
९४	९	शद्बप्रयोग	शब्दप्रयोग
१००	८	उभयसिद्धि	उभयासिद्धि
१२७	१६	वृतित्व	वृत्तित्व
१२८	४	अनुभवन	अनुभव न
१२९	२२	प्रत्य	प्रत्ययेन
१३६	६	आतख्या	आत्मख्या
,,	९	समेदावभास	सभेदावभास।
१३०	४	विवर्तवाद	(८)विवर्त्तवाद
,,	५	साटि	सृट